Nation First

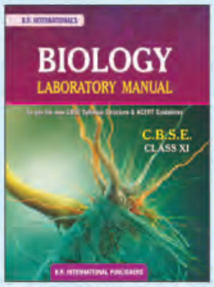

Biology
Laboratory Manual
Class XI-XII

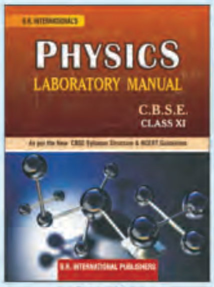

Physics
Laboratory Manual
Class XI-XII

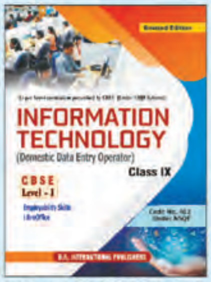

Information Technology
Class IX-X
Code No- 402

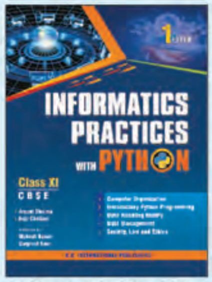

Informatics Practices
with Python
Class XI-XII
Code No- 065

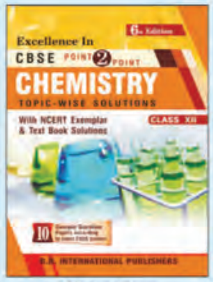

Chemistry
Class XI-XII

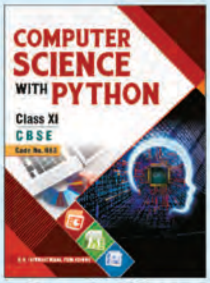

Computer Science
with Python
Class XI-XII
Code 083

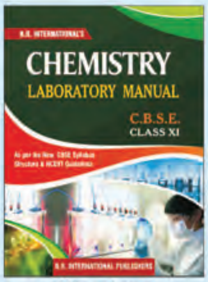

Chemistry
Laboratory Manual
Class XI-XII

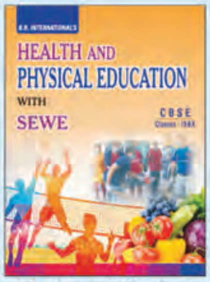

Health and Physical
Education with SEWE
Classes IX & X

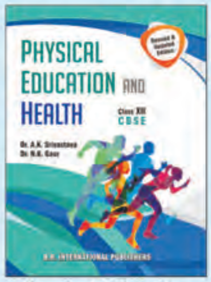

Physical Education
and Health
Classes XI-XII

शारीरिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य
Classes XI-XII

Computer Applications
Class IX-X
Code No- 165

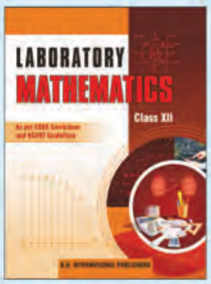

Laboratory
Mathematics
Class IX-XII

हिंदी व्याकरण एवं रचना
कोर्स A&B
Classes IX-X

Web Application
Class XI-XII
Code No- 803

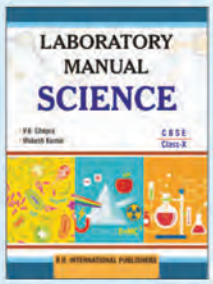

Laboratory Manual
SCIENCE
Class IX-X

B.R. INTERNATIONAL PUBLISHERS

4598, 1st Floor, 12B, Darya Ganj, New Delhi - 110002
Phone : 011 23264222, 23241633, 9891110888
E-mail : br_intl@rediffmail.com Website : www.brpublisher.in

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
अतुल वर्धन

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और
रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक : पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित :
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति
साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-5; अंक-1; जनवरी-फरवरी, 2020

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* — 2
पाठकीय प्रतिक्रिया — 3
आलेख — **क्यों भारत और दुनिया को है गांधी की जरूरत** *—श्री नरेन्द्र मोदी* — 4
विरासत — **भारत को क्या करना चाहिए?**—*आचार्य रामचंद्र शुक्ल* — 6
स्मृति — **आचार्य नामवर सिंह**—*अश्विनी कुमार दुबे* — 9
रूपांतरण — **बस्तरिया भाषा में गांधी बाबा**—*भरत कुमार गंगादित्य* — 12
आलेख — **बा के बगैर बापू का क्या वजूद**—*भगवती प्रसाद गौतम* — 13
लोक संस्कृति — **लोक संस्कृति की विस्मृत नाट्य-कृति : नकटौरा** *—डॉ. रश्मि शील* — 16
धरोहर — **लियो टॉल्स्टॉय**—*मोहनदास करमचंद गांधी* — 19
आलेख — **इतिहास बनती पारंपरिक लेखन सामग्री**—*सीताराम गुप्ता* — 23
आलेख — **स्वतंत्रता से गणतंत्र की यात्रा**—*विजय कुमार* — 26
विज्ञान — **ब्रह्मांड की उत्पत्ति : कब और कैसे?**—*प्रदीप* — 29
शब्द ज्ञान — **आओ भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32
श्रद्धांजलि — **गांधीजी की श्रद्धांजलियाँ** — 34
लेख — **विश्व राजनीति एवं भारतीय विदेश नीति पर महात्मा गांधी का प्रभाव**—*डॉ. श्रीश पाठक* — 35
लेख — **भारतीय संस्कृति की पहचान है सामाजिक इतिहास**—*संजय गोस्वामी* — 38
आलेख — **महात्मा गांधी की भाषाई दृष्टि**—*डॉ. साकेत सहाय* — 40
साक्षात्कार — **पुष्पा भारती : जो भी लिखा, हमेशा मूल ही लिखा** *—दीप्ति अंगरीश* — 43
पुस्तक समीक्षा — 45
पुस्तकें मिलीं — 60
साहित्यिक गतिविधियाँ — 62

गणतंत्र हमसे एक प्रश्न पूछता है

गणतंत्र हमारी पहचान है। हमें यह पहचान भारतीय संविधान ने दी है। भारत के संविधान की उद्घोषणा में कहा गया है कि हम, 'संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य हैं।' जिस संविधान ने भारत को गणतंत्र बनाया, वह संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ। यद्यपि उसे 26 नवंबर, 1949 को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया।

गणतंत्र के रूप में हमने बहुत प्रगति की है। शासन में जन की भागीदारी सुनिश्चित हुई है। दक्षिण एशियाई देशों में जहाँ सैनिक सत्ता द्वारा कई बार स्थानीय नागरिक सरकारों को उखाड़ फेंका गया है, उस समय हमारे देश में प्रजातंत्र उत्तरोत्तर सशक्त बना है। हम आज उम्मीदों के प्रजातंत्र के रूप में देखे जा रहे हैं।

हमने आर्थिक प्रगति की है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत की प्रगति एक उदाहरण है। आई.आई.टी. तथा अन्य प्रौद्योगिकी संस्थानों से प्रशिक्षित स्नातकों ने हमारे देश की ही नहीं, अन्य देशों की भी तस्वीर बदली है। अंतरिक्ष विज्ञान क्षेत्र में हम बहुत आगे हैं। उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में 'मेक इन इंडिया' नीति और दृढ़ता हमें बहुत आगे तक ले जा रही है। अधोसंरचना का विकास, साक्षरता में वृद्धि, स्वास्थ्य योजनाएँ, 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के प्रयत्न, गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले जन की चिंता, उनके लिए किए जाने वाले प्रयत्न निश्चित रूप से देश को विकास की राह पर तेजी से आगे ले जा रहे हैं।

इतना होने पर भी हमें और तेजी के साथ विकास की राह को दूर-दराज तक ले जाना होगा। जनजातीय लोगों के लिए विकास की बहुत-सी योजनाएँ बनी हैं। परिणामस्वरूप जनजातीय लोगों के जीवन में बहुत सकारात्मक बदलाव आए हैं। किंतु अभी भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। मैं एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ, यह घटना सब कुछ कहती है। मेरे मित्र श्री अमृतलाल बेगड़ जो नर्मदा की कई बार पैदल परिक्रमा कर चुके हैं, से एक बार मैंने सहज पूछा कि आजकल आप क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा कि आजकल मैं नर्मदा की सहायक नदियों की परिक्रमा कर रहा हूँ। ये नदियाँ नर्मदा की सहेलियाँ हैं। इन नदियों के किनारे के गाँवों, कस्बों, शहरों का जनजीवन, संस्कृति, रहन-सहन, आचार-विचार और बोलियों को जानने एवं समझने की कोशिश कर रहा हूँ। बातचीत के दौरान बेगड़ जी ने एक अनुभव सुनाया। वे नर्मदा की सहायक नदी बुढ़नेर की परिक्रमा के दौरान ढ़िढोरी के पास के एक गाँव में थे, इन गाँवों में बैगा जनजाति के लोग रहते हैं। श्री बेगड़ की पत्नी भी साथ थीं। परिक्रमा में एक दिन वे एक बैगा जनजाति के व्यक्ति के घर पहुँचे। पत्नी उस परिवार की झोंपड़ी के अंदर गईं और काफी देर तक झोंपड़ी के अंदर की बनावट को देखती रहीं। दीवारों की बनावट, कपड़े टाँगने के लिए खींची गई डोरी, बर्तनों को रखने की जगह रसोई का स्थान, अन्य सामान जो न के बराबर था वह कहाँ रखा है, आदि आदि। जब वे यह सब देख रही थीं, उस परिवार की महिला ने बोरी (जूट की बनी हुई) बिछाकर श्रीमती बेगड़ से बैठने का आग्रह किया। श्रीमती बेगड़ ने उससे बैठने के लिए मना कर दिया। उस जनजाति की महिला को लगा कि बोरी गंदी है और कपड़े साफ-सुथरे हैं, इस कारण बैठने के लिए मना किया होगा। अतः उसने अपनी धोती उस बोरी पर बिछाते हुए पुनः बैठने का आग्रह किया। श्रीमती बेगड़ तब भी नहीं बैठीं और उन्होंने कहा कि वे घर की बनावट और घर के अंदर क्या-क्या है, और कैसे उसे रखते हैं यह सब देखना चाहती हैं, अतः बैठना आवश्यक नहीं है। जनजाति की उस महिला से श्रीमती बेगड़ की बात होती रही, इस पूरे घटनाक्रम के दौरान उस महिला का चार-पाँच वर्ष का बेटा लगातार रोता रहा। यह सब देख श्रीमती बेगड़ ने उस महिला से कहा कि तुम अपने बच्चे को चुप क्यों नहीं करतीं। यह बच्चा जब से हम आए हैं, लगातार रो रहा है। इस पर उस महिला ने जवाब दिया कि वह चुप नहीं होगा, रोते-रोते वह अपने आप सो जाएगा। कारण पूछने पर कि तुम माँ हो, बच्चे को चुप क्यों नहीं करतीं तो उसने जो जवाब दिया वह दिल तक उतरने वाला और हमारी समूची व्यवस्था को रुलाने वाला था। उस महिला ने कहा कि यह भूखा है, इसका पेट भरने के लिए इस समय घर में कुछ भी नहीं है। जब श्रीमती बेगड़ ने उस बच्चे को खाने के लिए अपने पर्स से कुछ बिस्कुट देने चाहे तो बैगा जनजाति की उस महिला (स्वाभिमानी) ने ऐसा करने से रोक दिया और बिस्कुट नहीं देने दिए। उसका तर्क था आज आप बिस्कुट दे जाओगी, इससे इसकी आदत बिगड़ जाएगी। अगली बार रोने पर यह उम्मीद करेगा कि इसे कुछ खाने को मिलेगा, पर हम कहाँ से लाएँगे। इसे जीवन इसी तरह बिताना है, जब मिल गया खा लिया, नहीं मिला तो भूखे सो गया। पूरा जीवन ऐसे ही काटना है, अतः इसे भूखा रहना और रोना सीखना पड़ेगा।

देश के विकास के साथ-ही-साथ बैगा जनजाति के विकास की केंद्रीय और राज्य सरकार की कई योजनाएँ चल रही हैं, पर गणतंत्र के 69 वर्ष हो जाने के बाद की धरातलीय सच्चाई यह है कि जीवन भूख और रोने के बीच पल रहा है, बड़ा हो रहा है और मर रहा है।

हम गणतंत्र दिवस पर कुछ तो सोचें। गांधी जी ने हमारे कार्यों की कसौटी के लिए एक जंतर की बात कही है। इसमें वे कहते हैं कि अपने कार्य के लिए निचले क्रम में आने वाले व्यक्ति को ध्यान में रखो। हम इस मापदंड पर कब अपने को खरा उतारेंगे। क्रम में सबसे निचले स्तर पर आने वाले व्यक्ति के लिए योजनाओं को कब प्रतिबद्धता और ईमानदारी से लागू करेंगे। स्वतंत्र देश के नागरिक होने के नाते हम किसी अन्य को दोष नहीं दे सकते। देश हमारा है, देश की जनता हमारी है, योजनाएँ भी हमारी हैं, कार्यान्वयन भी हमें ही करना है। जब हम गणतंत्र दिवस के अवसर पर राष्ट्रध्वज फहराते हैं, उसके सामने खड़े होते हैं तब गणतंत्र हमें बुलाता है अपने सामने खड़े हुए हमसे पूछता है क्या कर रहे हो? ऐसे ही चलेगा क्या? उस समय इस सीधे-सादे प्रश्न का जो उत्तर हम देंगे, वह हमारी असली तश्वीर है। प्रश्न गणतंत्र का है, उत्तर गणतंत्र के लिए गौरव करने वालों का है। आपका उत्तर आपकी असलियत है। एक राष्ट्र के संदर्भ में वही आपकी पहचान भी है।

जो समाज अपनी समस्याओं और अपने सामने उपस्थित चुनौतियों को सामना स्वयं नहीं कर पाता, वह समाज या तो टूट जाता है या पराधीन हो जाता है। हम गणतंत्र हैं, विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र हैं, हममें पौरुष और ऊर्जा की कमी नहीं है। आज जो देश विश्व में सर्वाधिक संपन्न है, उसे इस स्थिति में पहुँचाने में हमारे वैज्ञानिकों, इंजीनियरों का बहुत बड़ा योगदान है। हमें अपने देश के संदर्भ में समाजपरक दृष्टि, राष्ट्रभाव और गांधी की सीख को सामने रखकर कार्य करने की आवश्यकता है। यदि हम ऐसा कर सके तो फिर ऐसा कोई भी अनुभव किसी को नहीं आएगा और गणतंत्र शक्तिशाली होता हुआ सभी से ताकत लेता हुआ आगे बढ़ सकेगा।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

पाठकीय प्रतिक्रिया

'पुस्तक संस्कृति' ने प्रारंभ से ही उपयोगी सामग्री देकर पाठकों को साहित्यिक खुराक देने का कार्य किया है। मुझे खुशी एवं गर्व है कि मैं इस महत्वपूर्ण पत्रिका से जुड़ा हुआ हूँ। 'बाल साहित्य' को समर्पित नवंबर-दिसंबर 2019 विशेषांक पढ़कर मन हर्षित हुआ। आज के युग में बाल साहित्य की उपयोगिता ज्यादा बढ़ गई है। बच्चों को संस्कारित करने की परंपरा जो परिवार और समाज द्वारा पोषित होती थी, वह विलुप्तता के कगार पर है। ऐसे में बाल साहित्य पर ही समग्र दायित्व आता है। प्रो. गोविंद शर्मा जी ने राष्ट्रीय स्तर पर बाल साहित्य अकादमी के गठन की बात कही है जो इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा। 'खेल गीत', 'बाल मन में लोक कलाओं की पैठ' सहित संपूर्ण सामग्री बाल मन को छूने वाली है। शुभकामनाएँ!

डॉ. गोपाल 'राजगोपाल'
उदयपुर

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका अपने आप में अनूठी है। पत्रिका में लेखों का चुनाव भी बहुत अच्छा है। जाई व्हिटेकर की कहानी 'कहानी सरीसृपों यानी रेंगने वाले जीवों की' पर्यावरण व पारिस्थितिकी संतुलन का संदेश देती है। पत्रिका में छापी गई समीक्षाओं से प्रकाशित हुई नई पुस्तकों और उसमें लिए गए विषय की जानकारी मिलती है। संपादकीय लेख में प्रो. गोविंद शर्मा ने बाल साहित्य को विज्ञान से जोड़ते हुए एक बहुत अच्छा प्रश्न किया है कि क्या विज्ञान आधारित बाल साहित्य मूल्य विहीन हो सकता है? श्री शर्मा का लेख बहुत प्रभावशाली और विचारोत्तेजक है। पत्रिका का संकलन एवं संपादन बहुत शानदार है। बहुत-बहुत बधाई!

डॉ. मीनाक्षी स्वामी,
इंदौर

'पुस्तक संस्कृति' का नया अंक मिला। पत्रिका खोलते ही मेरी नज़र संपादकीय लेख पर पड़ी। प्रो. गोविंद शर्मा द्वारा लिखित 'बाल साहित्य के बिना साहित्य अधूरा है' लेख पढ़ने पर मैं आत्ममंथन के लिए विवश हो गया कि हमने बचपन से दादी-नानी से सुनी कहानियों को यदि वैज्ञानिक लेखन में पढ़ा होता तो क्या परियों की कथा या चंदा मामा की कहानी पर हम विश्वास कर पाते। लेकिन यह भी सत्य है कि आज बाल साहित्य के वैज्ञानिक लेखन से जो साहित्य निकल कर आ रहा है, उसे पढ़ने के बाद बालमन की उत्सुकता व जिज्ञासा और बढ़ जाती है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने इस पत्रिका का प्रकाशन कर पाठकों को साहित्य से जोड़ने का महती कार्य किया है। पत्रिका की गुणवत्ता और प्रासंगिकता निर्विवाद है। संपादक के अथक प्रयासों के लिए साधुवाद!

डॉ. रमेश तिवारी,
कटवारिया सराय, नई दिल्ली

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को मूर्तिदेवी पुरस्कार

भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से दिए जाने वाला वर्ष 2019 का **33वाँ मूर्तिदेवी पुरस्कार** साहित्य अकादेमी के पूर्व अध्यक्ष और वरिष्ठ कवि-आलोचक **डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी** को उनकी आत्मकथा **'अस्ति और भवति'** के लिए प्रदान किए जाने की घोषणा की गई है। यह पुस्तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित की गई है। यह पुस्तक अब पंजाबी भाषा में भी उपलब्ध है।

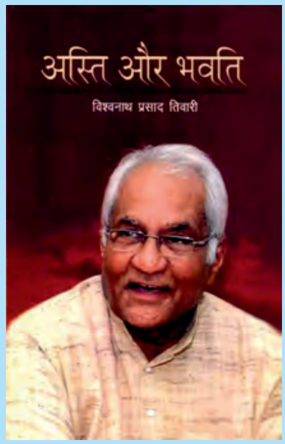

घोषणा-फार्म - 4 (नियम 8 देखिए)

पुस्तक संस्कृति (द्विमासिक)

1.	**प्रकाशन स्थल**	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
2.	**प्रकाशन अवधि**	:	द्विमासिक
3.	**मुद्रक का नाम**	:	अनुज कुमार भारती, द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
4.	**प्रकाशक का नाम**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
5.	**संपादक का नाम**	:	पंकज चतुर्वेदी
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
6.	**पत्रिका का स्वामित्व**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

क्यों भारत और दुनिया को है गांधी की ज़रूरत

–श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 150वीं जयंती पर पूरा देश बापू को नमन कर रहा है। ऐसे मौके पर देशभर में कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। यू.एन. भी इस मौके को अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मना रहा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने गांधी जयंती के मौके पर स्वच्छता को बड़े अभियान के रूप में अपनाया है। न्यूयॉर्क टाइम्स में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का यह लेख छपा है। प्रधानमंत्री मोदी के लेख में बताया गया है कि क्यों आज दुनिया और भारत को गांधी के विचारों की जरूरत है।

रेव. डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने 1959 में भारत पहुँचने पर टिप्पणी की, "अन्य देशों में मैं एक पर्यटक के रूप में जा सकता हूँ, लेकिन भारत में मैं एक तीर्थयात्री के रूप में आता हूँ।" साथ ही उन्होंने कहा कि "शायद, सबसे ऊपर, भारत ही वह भूमि है जहाँ अहिंसक सामाजिक बदलाव की तकनीकों का विकास किया गया और जिनका इस्तेमाल मेरे लोगों ने मॉन्टगोमरी, अलबामा और पूरे दक्षिण अमेरिका में अन्य जगहों पर किया। हमने उन्हें असरदार और टिकाऊ पाया—वे काम करते हैं!"

डॉ. किंग को जो दिशा दिखाने वाली रोशनी, प्रेरणा देकर भारत लाई, उसका नाम था—मोहनदास करमचंद गांधी, महात्मा, महान आत्मा। दो अक्तूबर को हम उनकी 150वीं जयंती मना रहे हैं। गांधी जी, या बापू की ओर से दुनियाभर में लाखों लोगों को हिम्मत देना जारी है।

प्रतिरोध के गांधीवादी तरीकों ने कई अफ्रीकी देशों में उम्मीद की लौ जलाई। डॉ. किंग ने कहा था, "जब मैं घाना, पश्चिम अफ्रीका के दौरे पर था, तो प्रधानमंत्री क्रूमाह ने मुझे बताया कि उन्होंने गांधी के कृतित्व को पढ़ा और उन्हें लगा कि अहिंसक प्रतिरोध को वहाँ भी आजमाया जा सकता है। हम याद कर सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में बसों का बहिष्कार भी हुआ।"

नेल्सन मंडेला ने गांधी का उल्लेख 'पवित्र योद्धा' के तौर पर किया और लिखा, "उनकी असहयोग की रणनीति, और उनका जोर देकर कहना कि हम पर हावी होने की कोशिश करने वाले तभी हावी हो सकते हैं जब हम उनके साथ सहयोग करते हैं। उनके अहिंसक प्रतिरोध ने हमारी सदी में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उपनिवेशवाद विरोधी और नस्लवाद विरोधी आंदोलनों को प्रेरित किया।"

श्री मंडेला के लिए, गांधी भारतीय और दक्षिण अफ्रीकी थे। गांधी ने इसका अनुमोदन किया होता। उनकी अनोखी खासियत थी और वो थी मानव समाज के सबसे बड़े विरोधाभासों के बीच सेतु बनने की।

गांधी ने 1925 में 'यंग इंडिया' में लिखा, "राष्ट्रवादी हुए बिना किसी का अंतरराष्ट्रीयवादी होना नामुमकिन है। अंतरराष्ट्रीयता तभी संभव है जब राष्ट्रवाद एक तथ्य के तौर पर उभरे यानी जब विभिन्न देशों के लोग खुद को संगठित कर चुके हैं और एक व्यक्ति के रूप में कार्य करने में सक्षम हैं।" उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की कल्पना की, जो कभी संकीर्ण या विशिष्ट नहीं था, बल्कि वो मानवता की सेवा के लिए काम करने वाला था।

महात्मा गांधी ने समाज के सभी वर्गों के बीच विश्वास भी प्रतिस्थापित किया। 1917

में, गुजरात के अहमदाबाद में बड़ी टेक्सटाइल हड़ताल हुई। जब मिल श्रमिकों और मालिकों के बीच टकराव इतना बढ़ गया कि समझौते की कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी, तब गांधी जी ने मध्यस्थता की और दोनों पक्षों को स्वीकार्य समझौता कराया।

गांधी ने श्रमिकों के अधिकारों के लिए 'माजूर महाजन संघ' संगठन बनाया। पहली नजर में, यह सिर्फ किसी भी संगठन जैसा नाम लग सकता है, लेकिन यह दिखाता है कि किस तरह छोटे कदमों से बड़ा असर डाला जा सकता है। उन दिनों 'महाजन' नाम कुलीन वर्ग के लोगों के लिए आदर सूचक इस्तेमाल होता था। गांधी ने 'महाजन' नाम को 'माजूर' या मजदूरों के नाम से जोड़कर सामाजिक संरचना को उलट दिया। उस शाब्दिक विकल्प के साथ, गांधी ने श्रमिकों के गर्व को बढ़ाया। गांधी ने सामान्य वस्तुओं को जन-राजनीति के साथ जोड़ा।

और कौन एक राष्ट्र की आर्थिक आत्मनिर्भरता और सशक्तीकरण के प्रतीक के तौर पर चरखा और घर पर बुने जा सकने वाले कपड़े का इस्तेमाल कर सकता था?

> **"अगर गरीबी उन्मूलन की बात की जाए तो भारत सबसे तेजी से काम करने वालों में शामिल है। हमारे स्वच्छता प्रयासों ने दुनियाभर का ध्यान खींचा है। भारत अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन जैसे प्रयासों के जरिए अक्षय संसाधनों का इस्तेमाल करने में भी आगे है। यह गठबंधन स्थायी भविष्य की खातिर सौर ऊर्जा का लाभ उठाने के लिए कई देशों को साथ लाया है। हम दुनिया के साथ और दुनिया के लिए और भी ज्यादा करना चाहते हैं।"**

और कौन चुटकीभर नमक से जन-आंदोलन खड़ा कर सकता था! औपनिवेशिक शासन के दौरान, भारत के नमक पर नया टैक्स लगाने वाले 'नमक कानून' बोझ बन गए थे। 1930 में दांडी मार्च के जरिए गांधी ने नमक कानूनों को चुनौती दी। अरब सागर तट से कुदरती नमक के छोटे टुकड़े को उठाकर ले जाने से ऐतिहासिक सविनय अवज्ञा आंदोलन को बढ़ावा मिला।

दुनिया में कई जन-आंदोलन हुए हैं, भारत में भी स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े कई हिस्से हैं, लेकिन गांधीवादी संघर्ष को जो सबसे अलग करता है, वो है उनसे प्रेरणा लेकर लोगों की बड़े पैमाने पर भागीदारी। उन्होंने कभी कोई प्रशासनिक या निर्वाचित कार्यालय नहीं सँभाला। उन्हें सत्ता कभी नहीं लुभा सकी।

उसके लिए, स्वतंत्रता बाहरी शासन की गैर-मौजूदगी नहीं थी। उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सशक्तिकरण के बीच गहरा नाता देखा। उन्होंने एक ऐसी दुनिया की कल्पना की जहाँ हर नागरिक की गरिमा और समृद्धि हो। जब दुनिया ने अधिकारों के बारे में बात की, तो गांधी ने दायित्वों पर जोर दिया। उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा, 'अधिकारों का सच्चा स्रोत दायित्व है। अगर हम सभी अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं, तो अधिकारों का मिलना भी दूर नहीं होगा।' उन्होंने 'हरिजन' नामक पत्रिका में लिखा, 'अधिकार उसे स्वतः मिलते हैं जो ईमानदारी से अपने दायित्वों को निभाता है।'

गांधी ने हमें ट्रस्टीशिप का सिद्धांत दिया जो गरीबों के सामाजिक-आर्थिक कल्याण पर जोर देता है। उसी से प्रेरणा लेकर हमें स्वामित्व की भावना के बारे में सोचना चाहिए। हम, पृथ्वी के वारिस के तौर पर इसकी बेहतरी के लिए जिम्मेदार हैं, जिसमें वो वनस्पति और जीव भी शामिल हैं जिनके साथ हम ग्रह को साझा करते हैं।

मार्गदर्शन के लिए गांधी के रूप में हमारे पास सबसे श्रेष्ठ शिक्षक हैं। टिकाऊ विकास के वादे मजबूत करने के लिए मानवता में विश्वास रखने वालों को एकजुट करने से लेकर आर्थिक आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने के लिए, गांधी हर समस्या का समाधान देते हैं।

हम भारत में अपना काम कर रहे हैं। अगर गरीबी उन्मूलन की बात की जाए तो भारत सबसे तेजी से काम करने वालों में शामिल है। हमारे स्वच्छता प्रयासों ने दुनियाभर का ध्यान खींचा है। भारत अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन जैसे प्रयासों के जरिए अक्षय संसाधनों का इस्तेमाल करने में भी आगे है। यह गठबंधन स्थायी भविष्य की खातिर सौर ऊर्जा का लाभ उठाने के लिए कई देशों को साथ लाया है। हम दुनिया के साथ और दुनिया के लिए और भी ज्यादा करना चाहते हैं।

गांधी को श्रद्धांजलि के रूप में जिसे मैं आइंस्टीन चैलेंज कहता हूँ, उसका प्रस्ताव करता हूँ। हम गांधी पर अल्बर्ट आइंस्टीन के मशहूर शब्दों को जानते हैं, "आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर मुश्किल से विश्वास करेंगी कि कभी हाड-मांस और खून वाला कोई ऐसा शख्स इस धरती पर चलता था।"

हम यह कैसे सुनिश्चित करें कि गांधी के आदर्शों को आने वाली पीढ़ियाँ याद रखें? मैं विचारकों, उद्यमियों और तकनीक लीडर्स को अभिनव तरीकों से गांधी के विचारों को फैलाने के लिए अग्रिम मोर्चे पर आने को आमंत्रित करता हूँ।

आइए, हम अपनी दुनिया को समृद्ध बनाने के लिए, नफरत, हिंसा और पीड़ा से मुक्त बनाने के लिए, कंधे से कंधा मिलाकर काम करें। यह तभी होगा जब हम महात्मा गांधी के सपने को पूरा करेंगे जो उनके पसंदीदा भजन, 'वैष्णव जन तो,' से स्पष्ट होता है। जो कहता है कि सच्चा मानव वह है जो दूसरों के दर्द को महसूस करता है, दुख को दूर करता है और वह कभी भी अहंकारी नहीं होता है।

दुनिया आपके सामने नतमस्तक है, प्यारे बापू!

(यह लेख दो अक्तूबर, 2019 को महात्मा गांधी की 150वीं जन्मतिथि पर प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के लिए लिखे गए लेख का अनुवाद है।)

भारत को क्या करना चाहिए?

भारत को क्या करना चाहिए? यह प्रश्न इतना व्यापक है कि ध्यान केंद्रित करने के लिए, इसे कई भागों में बाँटना जरूरी होगा। वास्तव में इसमें कई उपप्रश्न छिपे हुए हैं, जैसे अपनी सामाजिक परिस्थिति को बदलने के लिए भारत को क्या कदम उठाने चाहिए, आदि-आदि। प्रश्न का ऐसा विभाजन इसलिए भी आवश्यक है कि इसे एक अधिक व्यावहारिक सीमा में बाँधा जा सके। लेकिन यदि हमें ऐसे कार्यकर्ता मिलें, जो इस प्रश्न के अलग-अलग पहलू को हल करने में खुद को लगाएँ और सिर्फ अपने काम से ही मतलब रखें तो क्या इससे काम चल जाएगा? नहीं! किसी एक पहलू को दूसरे पर तरजीह देते वक्त, बदलते हुए समय को भी ध्यान में रखना होगा। दरअसल, हमें समाज-सुधारक, राजनीतिक, आंदोलनकर्ता, कवि और शिक्षाविद—इन सबकी एक ही साथ, एक ही समय में, जरूरत है। लेकिन इनसे भी ज्यादा जरूरत हमें ऐसे लोगों की है, जिनका काम यह देखना हो कि किसी विशेष कार्यक्षेत्र में किसी विशिष्ट अवसर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त लोग हैं या नहीं। लेकिन यहाँ जो वस्तुस्थिति है, उसे कोई भी पसंद नहीं करेगा। बहुधा हमें किसी एक विशेष कार्यक्षेत्र से संबंध रखने वाले ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, जो दूसरी तरह के काम करने वालों के बारे में बहुत हल्के ढंग से बात करते हैं। किसी भी स्थिति में यह वांछनीय नहीं है। इसके विपरीत प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति द्वारा कोई विशेष परिणाम प्राप्त करने के लिए अपनाए गए तरीके के सामर्थ्य में विश्वास होना चाहिए; विशेष परिणाम, जो आगे चलकर एक बड़े सामान्य लक्ष्य का अनिवार्य अंग होने जा रहा हो। लेकिन जिस क्रम में हमें आगे बढ़ना है, वह हमारी आँख से ओझल नहीं होना चाहिए। इस दिशा में की गई कोई भी गलती आगे चलकर अनंत असफलताओं को जन्म दे सकती है।

महत्व के लिहाज से जिस चीज पर हमें सबसे पहले ध्यान देना चाहिए वह है सामाजिक बुराइयों को दूर करने का काम, क्योंकि इनका असर सीधे उस सामाजिक स्रोत पर पड़ता है, जहाँ से हमें प्रत्येक क्षेत्र में काम करने के लिए कार्यकर्ता प्राप्त होते हैं। यदि आप इस रचनात्मक शक्ति की उपेक्षा करेंगे, तो कायदे से आप कहीं से कुछ भी उम्मीद नहीं कर सकते। बात यह है कि किसी काम को करने के लिए पहले उपकरण खोजा जाता है, फिर उसके इस्तेमाल के तरीके को जानने के लिए अधीर होते हैं। यह बात हमारी समझ में और भी आसानी से आ सकेगी; अगर हम अपने समाज में व्याप्त किसी एक बुराई के प्रभाव पर ही ध्यान दें। उदाहरण के लिए बाल-विवाह को लें। इस प्रथा ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में जो नुकसान पहुँचाया है, उसे पूरी तरह कौन बयान कर सकता है? यह हमारे शारीरिक, मानसिक और नैतिक पतन का एक मात्र कारण है। अपने अतिरिक्त दूसरी बातों पर ध्यान देने के लिए आवश्यक शक्ति और अवकाश से हमें वंचित करके यह प्रथा हमें

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी आलोचक, निबंधकार, साहित्येतिहासकार, अनुवादक, कथाकार और कवि थे। उनके द्वारा लिखी गई सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक है—हिंदी साहित्य का इतिहास, जिसके द्वारा आज भी काल निर्धारण एवं पाठ्यक्रम निर्माण में सहायता ली जाती है। हिंदी में पाठ आधारित वैज्ञानिक आलोचना का सूत्रपात उन्हीं के द्वारा हुआ। हिंदी निबंध के क्षेत्र में भी शुक्ल जी का महत्वपूर्ण योगदान है। संपादित ग्रंथों में हिंदी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भ्रमरगीत सार, सूर, तुलसी जायसी ग्रंथावली उल्लेखनीय है।

स्वार्थी बना देती है और इस प्रकार हमारे अंदर सारी राष्ट्रीय भावनाओं के विकास को अवरुद्ध कर देती है। यदि किसी स्वस्थ समाज में इस प्रथा को शुरू करके आप वहाँ उसके प्रभाव को देखें तो आपको पता चलेगा कि यह कहाँ ले जाती है। उस समाज के व्यक्ति की गतिविधियों का दायरा उसकी अक्षमता के बढ़ने के साथ-साथ निश्चित रूप से सिमटता जाएगा और उसी अनुपात में गतिविधियों से प्रभावित होने वाले लोगों की संख्या भी घटती जाएगी। परिणामतः यदि पहले उस समाज में ऐसे लोग थे, जो एक पूरे समूह का ध्यान रख सकते थे, तो अगली पीढ़ी में (इस प्रथा को लागू करने के बाद) आपको ऐसे लोग मिलेंगे, जो सिर्फ अपने परिवारों की देखभाल करने में संतुष्ट हैं। उससे नीचे उतरेंगे, तो आपको यह देखकर धक्का लगेगा कि बहुसंख्यक लोग अपने-आपको छोड़कर और किसी चीज की चिंता नहीं करते।

एक शक्तिशाली समाज के निर्माण में सफल हो जाने के बाद, जिससे सदस्य कोई भी काम करने को तैयार हों, हमें उन सदस्यों को शिक्षा देने की फिक्र करनी चाहिए-ऐसी शिक्षा, जो दूसरी बातों के अतिरिक्त एक उच्च उत्तरदायित्व के भाव से किसी को युक्त कर देती है और उसकी महत्वाकांक्षाओं के लिए ऐसे क्षेत्र प्रदान करती है, जो सलाम बजाने या मालगुजारी इकट्ठा करने के काम से बड़े होते हैं। हमें इस बात से खुशी है कि बंगाल के हमारे भाई बहुत अरसे से महसूस की जा रही इस कमी को दूर करने की कोशिश कर रहे हैं। शिक्षा से मेरा मतलब सामान्य महत्व के मामलों के बारे में हमारे नेताओं की राय का अशिक्षित जनता तक संप्रेषण भी है ताकि अवसर आने पर उनका सहयोग (अशिक्षित जनता का-अनु.) मिलने से न रह जाए। प्रत्येक ग्रामवासी को यह जानना चाहिए कि अधिक काम करने के बाद भी उसे उसके बदले में कम क्यों दिया जाता है, प्रत्येक नागरिक को यह बताया जाना चाहिए कि उसकी सेवाओं की इतनी कम माँग क्यों है, और वस्तुतः प्रत्येक भारतीय को यह साफ-साफ पता होना चाहिए कि उसका देश दिन-ब-दिन और गरीब क्यों होता जा रहा है? आप अगर चाहें तो इसे राजनीतिक शिक्षा भी कह सकते हैं। इस प्रकार की शिक्षा देने वाले कॉलेज ही शिक्षा के एकमात्र स्थान नहीं होने चाहिए। सुविधाजनक स्थानों पर सार्वजनिक भाषणों का आयोजन करके और ऐसे लोगों को गाँवों में भेजकर, जो अशिक्षित जनता को उन्हें प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के बारे में समझाकर उसे काम करने का रास्ता बतलाएँ—हम बहुत कुछ कर सकते हैं। भारतीय जनमानस को एक सामंजस्यपूर्ण धरातल पर लाने में देसी भाषा के बढ़ते हुए साहित्य की जो भूमिका है, उसकी शायद हम उपेक्षा नहीं कर सकते। यहाँ मैं ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में संबंधित किसी विस्तार में जाने की कोई इच्छा नहीं रखता। इतना ही कहना काफी है कि इन क्षेत्रों में से किसी एक पर हम कितना ध्यान दें, यह तय करने में समय की आवश्यकताएँ ही हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, भारत की आर्थिक स्थिति की माँग यह है कि किसी भी दूसरे काम से पहले उसके उद्योग-धंधों का परिवर्द्धन और परिष्कार किया जाए और यह, जिसे हम तकनीकी शिक्षा कहते हैं, उस पर सबसे ज्यादा निर्भर करता है।

अब हम अपने काम के उस हिस्से पर आते हैं, जिससे लोग सबसे ज्यादा डरते हैं, हालाँकि इसमें इससे ज्यादा कुछ नहीं करना कि सरकार से यह कहा जाए कि वह हमसे ठीक तरह से पेश आए और ऐसे कदम उठाए, जो प्रगति की दिशा में हमें थोड़ा भी आगे ले जा सके, न कि हमारे रास्ते में बाधा बन जाए। दुख की बात यह है कि हमारी भारत सरकार के कुछ अपने अजीबो-गरीब पूर्वाग्रह हैं। कुछ लोग इन्हीं के मुताबिक चलना पसंद करते हैं। वे ऐसे सौभाग्यशाली लोग हैं, जिन्हें 'स्वर्ग के साम्राज्य में अकेले प्रवेश मिलेगा।' ये सौभाग्यशाली लोग अपनी सारी विशिष्टताएँ खो बैठते हैं और अंततः उस परम सत्ता के साथ एकाकार हो जाते हैं। इस तरह हिंदुओं की अवधारणा के अनुसार वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं! अगर सब कुछ ऐसे ही चलता रहा, तो ब्रिटिश सरकार जनता के बीच बदनाम होकर रहेगी। यदि हमारी सरकार शांति और संतोष चाहती है, तो उसे ऐसी नीति और लक्ष्य को अपनाना होगा, जो उसके पिछले चरित्र से कतई अलग हो। हमारे विचारों के खिलाफ ब्रिटिश लोग जो सबसे सामान्य दलील पेश करते हैं, वह यह है कि वे (हमारे विचार-अनु.) जनता के विचार नहीं हैं। हमारे नेताओं की बहुत ही चालाकी भरे ढंग से 'लाखों-लाख लोगों के स्वघोषित-प्रतिनिधि' कहा जाता है। पहले मुझे यह पूछने की इजाजत दीजिए कि सार्वजनिक मामलों में हमें किन लोगों की राय नहीं लेनी

चाहिए। क्या वे ऐसे लोग नहीं हैं, 1. जिन्हें आपने अपने खास मकसद के लिए सारी चीजों से अनजान रखा है। और 2. जो आपके पूर्वाग्रहों से फायदा उठा लेने के हर मौके की तलाश में रहते हैं? पहली किस्म के लोगों का अपना कोई मत नहीं होता। उनके विपरीत दूसरी किस्म के लोग अपना मत रखने का दावा करते हैं, लेकिन वे संख्या में और बौद्धिक दृष्टि से इतने उपेक्षणीय हैं कि हमारे आंदोलनों के चरित्र की प्रतिनिधिकता में कोई संदेह पैदा नहीं कर सकते। जहाँ तक हम देख पाए हैं, साम्राज्यवाद ही भारत में ब्रिटिश राष्ट्र की नीति की प्रेरक शक्ति रहा है। उन्होंने (ब्रिटिश-अनु.) यह हाल कर रखा है कि भारतीय प्रशासन में उनकी अपनी ब्रिटिश परिकल्पना का एक रेशा भी नहीं दिखाई देता। इसमें शक नहीं कि वे रूप को सुरक्षित रखते हैं, लेकिन वे उस सारतत्व को खत्म कर देते हैं। हमारे पास म्यूनिसिपल

“हमारे पास म्यूनिसिपल बोर्ड है, लेजिस्लेटिव काउंसिलें हैं, क्या नहीं है? लेकिन दिखावे के अलावा उसका और कोई मकसद भी है? हमारा प्रशासनिक जगत ऐसा क्षेत्र नहीं रह गया है। जहाँ प्रतियोगिता के लिए कोई जगह हो, जिसमें योग्यता की जाँच का कोई मौका हो। शिक्षा को इसके दरवाजे पर दुत्कार मिलती है, गुण को इसके कमरों में खारिज कर दिया जाता है। यह बनावटीपन और चालाकी की दुनिया है।”

बोर्ड है, लेजिस्लेटिव काउंसिलें हैं, क्या नहीं है? लेकिन दिखावे के अलावा उसका और कोई मकसद भी है? हमारा प्रशासनिक जगत ऐसा क्षेत्र नहीं रह गया है। जहाँ प्रतियोगिता के लिए कोई जगह हो, जिसमें योग्यता की जाँच का कोई मौका हो। शिक्षा को इसके दरवाजे पर दुत्कार मिलती है, गुण को इसके कमरों में खारिज कर दिया जाता है। यह बनावटीपन और चालाकी की दुनिया है। यहाँ सिर्फ 'अनुभव' की जरूरत है, जो सलाम बजाने और 'हुजूर' के हुक्म को दुहराने का ही दूसरा नाम है। जिस आदमी के पास यह योग्यता नहीं, वह कितना भी विद्वान क्यों न हो, उसे यहाँ प्रवेश नहीं मिल सकता। हमारे अफसरों पर, खासकर जिला अफसरों पर ज्यादा-से-ज्यादा लोगों के मुँह से 'हुजूर' सुनने की सनक इस बुरी हद तक सवार हो गई है कि वे किसी देसी आदमी को अंग्रेजी में बोलते हुए बरदाश्त नहीं कर पाते, अगर वह कम-से-कम उनको सुनाने के लिए खुशामदी बातें न करता हो। ऊपर जो बात बताई गई, वह मुख्य तौर पर यह दिखाने के लिए कि राजकीय मान्यता को उच्चतर उपलब्धियों के लिए प्रेरक नहीं माना जा सकता। हमें अपना पुरस्कार कहीं और खोजना होगा। हमें इसे या तो ईमानदार दिलों में खोजना चाहिए, या फिर अगर हम पैसे के स्वार्थ से काम करते हों तो बटुओं में खोजना चाहिए। यदि आप योग्य हैं, तो हमारे कवि आपका यश गाएँगे, हमारी जनता खुली बाहों से आपका स्वागत करेगी, हमारी स्त्रियाँ आप पर फूल बरसाएँगी या यदि बुरी स्थितियों में फँस गए हैं, तो आपके लिए आँसू बहाएँगी। आप जहाँ भी जाएँगे, आपके साथ एक सच्चा और राष्ट्रीय उत्साह का सागर चलेगा, जो झूठे और बनावटी उत्साह के विरुद्ध होता है। आपकी एक झलक पाने को लोग बेचैन रहेंगे। क्या मानवीय अहं की तुष्टि के लिए यह पर्याप्त नहीं है?

जब इस प्रकार हम शिक्षा के दायरे को बढ़ाकर और ज्यादा लोगों को सुसंस्कृत बना लेंगे, तब अपनी योजना को सफल बनाने के लिए हमें ऐसे उपाय करने होंगे, जिनसे लोग अपने जीवन में आगे बढ़ सकें। यह तो तय है कि उन सारे लोगों को हमारी कचहरियाँ रोजगार नहीं दे सकेंगी। ऐसी स्थिति में उनकी सेवाओं का उपयोग करने के लिए और उन्हें इनका मूल्य देने के लिए हमें उद्योग और शिक्षा के विभिन्न केंद्र खोलने होंगे। कितने ही ज्यादा लोग क्यों न हों, काम हमेशा उनके लिए काफी होना चाहिए।

इस दिशा में स्वदेशी आंदोलन द्वारा एक प्रयास किया गया है। यह लाखों लोगों को भुखमरी से बचाने के लिए और नियमित रोजगार के अभाव में भटक रहे लाखों लोगों को काम देने के उद्देश्य से चलाया गया आंदोलन है। इसके मूल में कोई दुर्भावना या कोई बदले की भावना काम नहीं कर रही। यह एकदम शुद्ध और निश्छल है, इसलिए इसके साथ बरिसाल वाला सुलूक नहीं किया जा सकता। हम सहानुभूति की भावना से प्रेरित हैं। सदाशय क्रिश्चियन भाइयो, क्या हम आपसे भी ऐसी ही उम्मीद करें? क्या आप मानवता के नाम पर मदद के लिए हाथ बढ़ाएँगे? या यह कहेंगे कि 'हमें किसी भी दूसरी चीज की परवाह नहीं। हम सिर्फ अपना 'बटुआ' भरना चाहते हैं?' 'भरते रहो और भूखे मरते रहो'—क्या यही आपका शासक सिद्धांत होगा? आज तक हम अपने कर्तव्य के प्रति आँखें मूँदे हुए थे। अब हम उसके प्रति सजग हो गए हैं। इस क्षण में जो हमारे साथ हैं, वे हमारे दोस्त हैं; जो खुद को अलग रखे हुए हैं, वे उदासीन हैं, और जो हमारी मुखालिफत करते हैं, वे हमारे दुश्मन हैं। मेरे देशवासियों, जो इलाज आपने खोजा है, वही एकमात्र इलाज है, उसे दृढ़ता से पकड़े रहिए। अपनी पकड़ ढीली न होने दीजिए, वरना वह हमेशा के लिए हाथ से निकल जाएगा और फिर आपका विनाश सुनिश्चित हो जाएगा। अपने दुश्मनों को अपने बारे में यह कहने का मौका न दीजिए—"उनका सोचना ज्यादातर एक छूत की बीमारी की तरह होता है। और जब तक यह दौरा उन पर रहता है, तब तक इसके अलावा छोटी या बड़ी कोई भी दूसरी चीज ऐसी नहीं होती, जिसे लेकर वे इतना भयानक गर्जन-तर्जन करें। लेकिन दौरा गुजरने के एक घंटे के अंदर ही वे सब कुछ भूल कर बैठ जाते हैं।"

('सामान्यजन संदेश' के जनवरी-मार्च 2019 अंक से साभार)

आचार्य नामवर सिंह

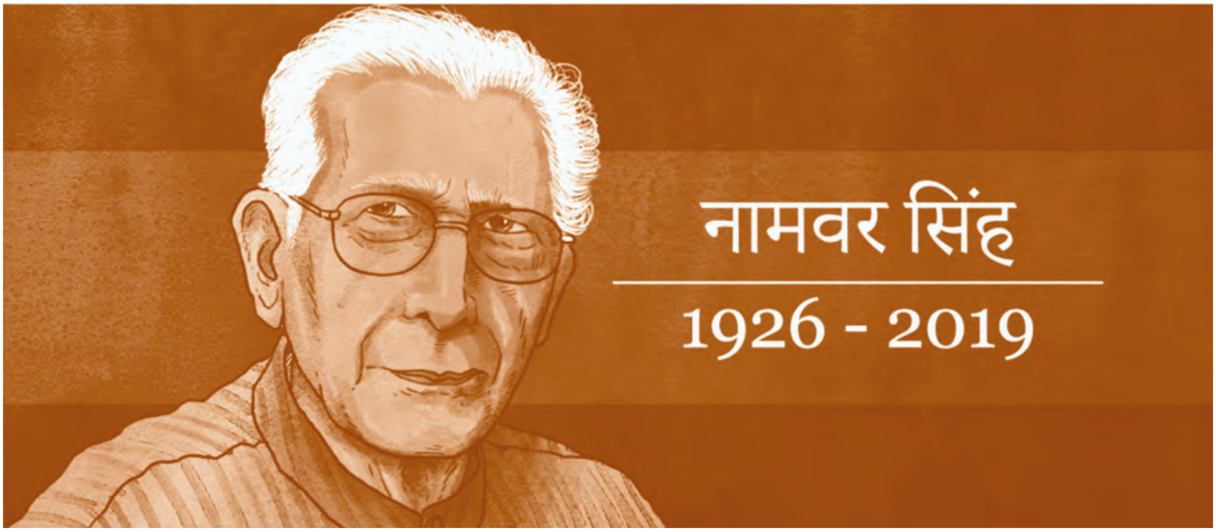

20 फरवरी, 2019 की सुबह रेडियो पर मैंने खबर सुनी कि हिंदी साहित्य के महान आलोचक आचार्य नामवर सिंह अब नहीं रहे। 19 फरवरी की रात दिल्ली के एक अस्पताल में उन्होंने अंतिम साँस ली। दिनभर रेडियो और टीवी पर यह समाचार हर बुलेटिन में आया। वाट्सएॅप, फेसबुक सहित पूरे सोशल मीडिया पर श्रद्धांजलियों का ताँता लगा रहा। पूरा हिंदी जगत इस खबर से स्तब्ध रह गया। 92 साल के हो गए थे वे, परंतु पूरी तरह सक्रिय थे। इसके पहले भी कुछ दिनों के लिए अस्पताल में भर्ती हुए थे, परंतु जल्द ही ठीक होकर घर आ गए। पहले कभी इतने अशक्त नहीं हुए कि घर में कैद होकर रह जाएँ। चलना-फिरना और बोलना जारी रहा। बिलकुल देशज व्यक्तित्व था उनका। खादी का कुर्ता-पजामा, जैकिट और पैरों में चप्पल। अपनी सेहत का राज बताते हुए एक बार उन्होंने कहा था, मैं रोज नाश्ते में सतुआ खाता हूँ। अपने सहज ग्रामीण जीवन की दिनचर्या उन्होंने हमेशा बनाए रखी।

बनारस के पास 'जीयनपुर' नामक गाँव के एक निम्न-मध्यम वर्गीय परिवार में उनका जन्म हुआ। वे अपना जन्मदिन एक मई (मजदूर दिवस) को मनाते थे। उनकी वास्तविक जन्मतिथि 28 जुलाई, 1926 है परंतु स्कूल के अंकपत्र में एक मई, 1927 लिखी गई, उन्होंने इसे ही सही माना और सब जगह इसी जन्मतिथि का उल्लेख करते रहे। परिवार की गरीबी, स्कूली एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षा के लिए संघर्ष के कठिन दिनों का वर्णन आपके छोटे भाई काशीनाथ सिंह ने अपनी संस्मरण पुस्तक : 'याद हो कि न याद हो' में बहुत मार्मिक ढंग से किया है। इसी पुस्तक में 'गरबीली गरीबी वह' शीर्षक निबंध पढ़ते हुए आँखें नम हो जाती हैं। बाद में विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तक 'गंगा स्नान करने चलोगे' में अपने गुरु आचार्य श्री नामवर सिंह को कई जगह बहुत आदर और स्नेहपूर्वक याद किया है। उसी पुस्तक में 'हक अदा न हुआ' शीर्षक लेख पढ़ते हुए मन भर आता है।

हिंदी साहित्य में एम.ए., पीएच.डी. करने के पश्चात वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हुए। प्रायः प्राध्यापक उतना ही पढ़ते हैं, जितना नौकरी मिलने के लिए जरूरी होता है। बाद में उनका लिखना-पढ़ना बंद हो जाता है। वे प्राध्यापक सुखी होते हैं। उनके जीवन में किसी प्रकार का जोखिम नहीं होता। जीवन में अपने विश्वासों के लिए जोखिम उठाना, संघर्ष करना और अपनी रीढ़ को कभी न झुकने देना, यह नामवर सिंह का स्वभाव शुरू से अंत तक रहा। नामवर सिंह का पहला आलोचनात्मक निबंध आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर था, जिसमें उन्होंने कई

अश्विनी कुमार दुबे

जन्म : 24 जुलाई, 1956

संप्रति : इंजीनियरिंग सेवाओं से सेवानिवृत्त।

लेखन : 1970 से लगातार लेखन, अब तक छह व्यंग्य संग्रह एवं तीन उपन्यास प्रकाशित।

संपर्क : फोन– 9425167003

ईमेल– ashwinikudubey@gmail.com

जगह आचार्य शुक्ल से अपनी असहमति जाहिर की थी। उस समय हिंदी के सबसे बड़े आलोचक की स्थापनाओं पर इस तरह सवाल उठाना बहुत बड़ी बात थी। इस लेख के छपते ही हिंदी जगत में तहलका मच गया। पक्ष और विपक्ष में प्रतिक्रियाओं की बाढ़-सी आ गई। नामवर सिंह ने संयत स्वर में अपनी बात कही—'आचार्य शुक्ल मेरी परंपरा हैं। वे बीज रूप में मेरे भीतर उपस्थित हैं। वे मेरे अंदर समाहित हैं। मैंने उस परंपरा को आगे बढ़ाया है।' इस लेख के छपने के बाद लोगों को यह विश्वास हो चला था कि नामवर सिंह की कलम निश्चित ही आलोचना के क्षेत्र में नए प्रतिमान स्थापित करेगी। 1952 में नामवर सिंह का एक विचारोत्तक लेख छपा—'इतिहास का नया दृष्टिकोण'। इस लेख में उन्होंने अपनी मान्यताएँ स्पष्ट करते हुए हिंदी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या पर जोर दिया। इस लेख की भी हिंदी जगत में सर्वत्र चर्चा हुई। अब हिंदी में एक नए किस्म की आलोचना का उदय हो गया था। नामवर सिंह की स्थापानाएँ तर्कपूर्ण और विवेक सम्मत होतीं, वहाँ कोरी भावुकता और पूर्वाग्रह के लिए कोई जगह न थी। अब

"नामवर सिंह की शुरू से ही अपनी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता स्पष्ट थी। 1959 में वे चकिया-चंदौली लोकसभा सीट से कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़े। पराजित हुए, परंतु उनका विश्वास पराजित नहीं हुआ। अब उनका काशी हिंदी विश्वविद्यालय से हटाया जाना तय था। उस समय न जाने कितने प्राध्यापक, कुलपति और अफसर आदि बुर्का ओढ़कर नेताओं का चरणवंदन कर रहे थे और नेता बदलते ही उसके दरबार में चेहरा बदलकर कसीदे पढ़ने चले जाते थे। ऐसे समय में सीधा खड़ा हुआ, सादा आदमी किसे बर्दाश्त होता?"

हिंदी आलोचना में लगातार उनके निबंध आ रहे थे, जिनमें वैचारिक विश्लेषण और नए मूल्यों की पक्षधरता देखते ही बनती थी। प्रारंभ से ही उनके हर लेख छपते ही चर्चा का विषय हो जाते थे। उनके लिखे हुए पर बहसें हो रही थीं। लोग उन लेखों को ढूँढ़ कर पढ़ते और उन पर बातें करते थे। निश्चित है, इस प्रकार उनके विरोधियों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी।

नामवर सिंह की शुरू से ही अपनी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता स्पष्ट थी। 1959 में वे चकिया-चंदौली लोकसभा सीट से कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़े। पराजित हुए, परंतु उनका विश्वास पराजित नहीं हुआ। अब उनका काशी हिंदी विश्वविद्यालय से हटाया जाना तय था। उस समय न जाने कितने प्राध्यापक, कुलपति और अफसर आदि बुर्का ओढ़कर नेताओं का चरणवंदन कर रहे थे और नेता बदलते ही उसके दरबार में चेहरा बदलकर कसीदे पढ़ने चले जाते थे। ऐसे समय में सीधा खड़ा हुआ, सादा आदमी किसे बर्दाश्त होता? नामवर सिंह को विश्वविद्यालय से हटा दिया गया। उनके कई मित्रों ने उन्हें कोर्ट में जाने की सलाह देते हुए कहा कि इस प्रकार आपको विश्वविद्यालय से हटाया जाना विधिसम्मत नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि विश्वविद्यालय की मर्जी के बगैर कोर्ट के आदेश से पुनः विश्वविद्यालय में जाना ठीक नहीं है।

उस समय उनकी प्रतिभा सिर चढ़कर बोलती थी। पूरा हिंदी संसार उन्हें एक महत्वपूर्ण आलोचक के रूप में मान रहा था। उनके लेख छपते ही सर्वत्र उनकी चर्चा होने लगती थी, तब वे विश्वविद्यालय से निकलकर बेरोजगार थे और परिवार चलाने के लिए कठिन आर्थिक संघर्ष कर रहे थे।

कुछ दिनों पश्चात सागर विश्वविद्यालय में उन्हें नौकरी मिली। वे अपनी शर्तों पर अपने मूल्यों को जीते हुए नौकरी करना चाहते थे, जो बहुत कठिन था। अब तक उनकी प्रसिद्ध किताबें 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', 'छायावाद' एवं 'इतिहास और आलोचना' प्रकाशित हो चुकी थीं। सागर विश्वविद्यालय में आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी का वर्चस्व था। वे छायावाद के विशेषज्ञ माने जाते थे। नामवर सिंह हिंदी आलोचना में नई दृष्टि लेकर आए। वे द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद की मान्यताओं के अनुसार हिंदी में आधुनिक विमर्श कर रहे थे। रूढ़िवादियों को उनकी यह शैली रास नहीं आई। उनके विरोधियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी। वे विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय थे। वे स्वयं नया-से-नया पढ़ते और विद्यार्थियों को भी नित नया पढ़ते रहने के लिए प्रेरित करते। उन्होंने मठाधीशों की परवाह नहीं की। अपनी मान्यताओं में उनका दृढ़ विश्वास था, परंतु वे सबकी सुनते और गंभीर विश्लेषण के साथ अपने विरोधियों को जवाब देते। लोगों को उनका यह स्वभाव पसंद नहीं आया और सालभर के पश्चात ही उनकी सागर विश्वविद्यालय से भी छुट्टी हो गई। वे निश्चिंत होकर बनारस आ गए।

कुछ दिनों पश्चात वे दिल्ली में 'जनयुग' साप्ताहिक के संपादक हुए। जनयुग में रहते हुए आपने साहित्यिक पत्रकारिता में नए कीर्तिमान स्थापित किए। आपकी प्रतिभा और लोकप्रियता देखते हुए 'राजकमल प्रकाशन समूह' ने आपको अपना साहित्यिक सलाहकार बनाया। इसी प्रकाशन समूह की प्रसिद्ध 'आलोचना' पत्रिका के आप संपादक भी बनाये गए। हिंदी के श्रेष्ठतम आचार्य होने के बावजूद लगभग दस वर्षों तक आप शैक्षणिक व्यवस्था द्वारा नहीं अपनाये गए। कालांतर में जोधपुर विश्वविद्यालय में आप हिंदी विभागाध्यक्ष के रूप में पदासीन हुए।

उन दिनों आपकी दो पुस्तकें 'कहानी : नई कहानी' और 'कविता के नये प्रतिमान' साहित्य जगत में खासी चर्चित हुईं। दोनों कृतियों ने साहित्य जगत में चर्चाओं, बहसों और विवादों का जबरदस्त वातावरण बनाया। नामवर सिंह एक आलोचक के रूप में कई

प्रतिभाओं को अच्छी तरह पहचानते थे। उन्होंने नए-से-नए लोगों को पढ़ा, जिनमें कोई बात थी, उन पर विस्तारपूर्वक लिखा और उन्हें साहित्य जगत में सम्मान दिलाया। निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' की श्रेष्ठता उन्होंने ही स्थापित की। अमरकांत की कहानी 'हत्यारे', प्रियंवदा की कहानी 'वापसी', शेखर जोशी की कहानी 'बदबू' पर आपने अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ प्रकाशित कराईं। न जाने कितने मठाधीश उनकी स्थापनाओं से असहमत थे। उनके लिखे पर साहित्यिक पत्रिकाओं में लगातार प्रतिक्रियाएँ छप रही थीं। वे अपने विश्लेषण और निष्कर्षों पर सदा कायम रहे।

इसी प्रकार कविता के क्षेत्र में 'कविता के नये प्रतिमान' उनकी सर्वाधिक चर्चित कृति है। इस पुस्तक को पढ़े बिना 'नई कविता की प्रवृत्तियाँ' समझना मुश्किल है। मुक्तिबोध को सबसे पहले नामवर सिंह ने पहचाना। उनकी कविता 'अँधेरे में' को एक महत्वपूर्ण कविता के रूप में उन्होंने ही स्थापित किया। एक अज्ञात-सी पत्रिका में धूमिल को पढ़कर नामवर जी ने धूमिल पर चर्चा की। इस प्रकार बिलकुल नए कहानीकारों और कवियों को गंभीरतापूर्वक पढ़ते हुए आपने अपनी आलोचना में उन्हें स्थान दिया। अब उनकी दो किताबें और 'दूसरी परंपरा की खोज' एवं 'वाद-विवाद-संवाद' भी प्रकाशित होकर आईं। हर किताब की तरह उनकी ये कृतियाँ भी हिंदी जगत में खासी चर्चित हुईं। अब हिंदी आलोचना के क्षेत्र में नामवर सिंह सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम था। आप उनकी स्थापनाओं से असहमत हो सकते हैं, परंतु उन्हें नकार नहीं सकते। बहुत लोग उनके प्रबल विरोधी हैं, परंतु उनकी प्रतिभा का सभी लोग लोहा मानते हैं।

वे विश्वविद्यालयों से निकाले गए। कई विरोधियों से व्यक्तिगत रूप से परेशान भी रहे, परंतु उन्होंने कभी किसी को बुरा नहीं कहा। अपने रास्ते अपने बलबूते पर ही बढ़ते रहे, कभी किसी के कंधे का इस्तेमाल नहीं किया।

बाद में वे जे.एन.यू. में आ गए और लंबे अरसे तक यहीं रहे। एक ओर लेखन में जहाँ उनका स्थान शिखर पर है, वहीं वाचिक परंपरा में भी उन्होंने अद्वितीय स्थान बनाया। जहाँ वे अपनी किताबों के लिए याद किए जाते हैं वहीं वे अपने भाषणों के लिए भी जाने जाते हैं। एक बार पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने उनके भाषण की खूब तारीफ की थी। वे देशभर में हर बड़े साहित्यिक जलसे में बुलाए जाते थे। उनको सुनना, सचमुच एक नए अनुभव से गुजरना हुआ करता था। कालांतर में उनके भाषणों को संकलित करके आशीष त्रिपाठी ने लगभग आठ किताबें प्रकाशित करवाईं, जो अपने आप में महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं।

नामवर जी बहुत समय तक राजा राममोहन पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष भी रहे। तत्पश्चात आप महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय के कुलाधिपति बनाये गए। आपको साहित्य अकादेमी पुरस्कार, शलाका सम्मान और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के प्रतिष्ठित साहित्य भूषण सम्मान के अलावा देशभर में कई पुरस्कार और सम्मानों से नवाजा गया। विशेष बात यह है कि आपके समकालीन कई प्रसिद्ध आलोचकों ने आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित कई पुस्तकें लिखीं जिनका हिंदी जगत में भरपूर स्वागत हुआ।

हिंदी का हर छोटा-बड़ा लेखक यह ख्वाहिश रखता था कि नामवर जी उसके विषय में कुछ लिखें या कहें। हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें नामवर जी को देखने, सुनने और पढ़ने का अवसर मिला।

बस्तरिया भाषा में गांधी बाबा

हल्बी :

बाट दखाला दुनिया के, नंगत उजर करला।
भाईग दखा आमचो गांधी बाबा जनम धरला॥

दुनिया को जिन्होंने अँधेरे में उजाले की राह दिखाई, ऐसे गांधी बाबा ने हमारे बीच जन्म लिया, यह हमारा सौभाग्य है।

गुजरात चो पोरबंदर जनम होली दखा।
मांय बाप चो नंगत सिखया मिरून गेला पक्का॥
सतधरम चो बाट ने हिंडतो नानी बेरा ले जानला।
हरिसचंद राजा चो नाट दखला आऊर मानला॥
आपलो जीवना सत ने चलाला, सत चो दिया बारला॥ 1॥
भाईग दखा आमचो गांधी बाबा जनम धरला॥

गुजरात के पोरबंदर में उनका जन्म हुआ। माता-पिता के द्वारा बचपन से ही उन्हें संस्कार-जनित शिक्षा दी गई। सत्य की राह पर चलने की प्रेरणा उन्हें बचपन से ही मिली। उन्होंने नाटक 'राजा हरिश्चंद्र' देखा और उसी नाटक के संस्कारों को जीवन में उतारा। उन्होंने अपना जीवन सत्य के अवलंबन से चलाया और सभी के बीच सत्य की ज्योति जलाई, ऐसे गांधी बाबा ने हमारे बीच जन्म लिया, यह हमारा सौभाग्य है।

पड़ई लिखई नंगत होली, वकालत करू रला।
दुख डंड बले सहून भाती, धरम के धरू रला॥
दूसर देश दक्षिण अफ्रीका ने बले गेला।
साँयती सँगे कसन लड़तो, बाट दखाऊन इला॥
अडरा नीती के नी मानतोर आय, असन गोठ के बलला॥ 2॥
भाईग दखा आमचो गांधी बाबा जनम धरला॥

उनकी पढ़ाई-लिखाई हुई, उन्होंने वकालत की शिक्षा ली थी। उन्होंने कई प्रकार के दुखों को सहा, लेकिन धर्म के मार्ग पर अड़िग रहे। इस बीच वे दूसरे देश दक्षिण अफ्रीका भी गए, जहाँ उन्होंने सिखाया कि शांति के साथ अपने हक की लड़ाई कैसे लड़नी है। अन्याय के सामने सिर नहीं झुकाना है, ये बात उन्होंने सभी को सिखाई, ऐसे गांधी बाबा ने हमारे बीच जन्म लिया, यह हमारा सौभाग्य है।

आमचो देस ने अंग्रेज मन, राज करते रला।
भारतवासी अतियाचार ने, खूबे हलाकान होला॥
असन समया गांधी बाबा तेबे सोर के साँगते गेला।
साँयती सँगे पूरे उबा होला, हक के माँगते गेला॥
हाते हथियार नी रहे तेबे ले, सपाय लड़ई करला॥ 3॥
भाईग दखा आमचो गांधी बाबा जनम धरला॥

तब हमारे देश में अंग्रेजों का शासन था। भारतवासी अंग्रेजों के अत्याचार से बहुत परेशान थे, ऐसे समय में गांधी बाबा ने सही उपाय बताए। उन्होंने शांति के साथ खड़े रहकर अंग्रेजों के आगे अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ी। तब उनके साथ लोग खड़े हुए और उनकी प्रेरणा से बिना हथियार के भी अंग्रेजों से लोहा लिया, ऐसे गांधी बाबा ने हमारे बीच जन्म लिया, यह हमारा सौभाग्य है।

अंधार गुचली बिहान पाहली, दुखडंड दिन गेली।
गोटोक दिने आमचो देस भारत आजाद होली॥
भगवान चो नांव के धरा, राम चो नांव के धरा।
मांतर सँगे आपलो काजे, कमानी काम के करा॥
चरखा धरून सूत बनाऊन असन गोठ के साँगला॥ 4॥
भाईग दखा आमचो गांधी बाबा जनम धरला॥

अँधियारा छँटा, सुबह हुई और दुख के दिन बीत गए। एक दिन ऐसा आया कि हमारे देश भारत को गुलामी से मुक्ति मिली। महात्मा गांधी ने प्रेरणा दी कि जीवन में भगवान का नाम लेना, राम का नाम लेना जितना आवश्यक है, उतना ही जीवन में स्वालंबन की भी आवश्यकता है। इसी बात की शिक्षा उन्होंने सभी को चरखे से सूत कातकर दी, ऐसे गांधी बाबा ने हमारे बीच जन्म लिया, यह हमारा सौभाग्य है।

उपास पियास जीवना काजे, खूबे नंगत आय।
नंगत गोठ के आमके साँगेसे, नंगत संगत आय॥
गांधी बाबा चो गोठ के मानूमं, उजर जीवना करूँ॥
सतधरम चो बाट ने हिंडूं, नंगत गोठ के धरूँ॥
देस काजे हुन जीवना जीवला, देस काजे जीव सोंपला॥ 5॥
भाईग दखा आमचो गांधी बाबा जनम धरला॥

जीवन में उपवास का बड़ा ही महत्व है और इसके साथ ही अच्छे लोगों की संगति या सत्संग भी जीवन में आवश्यक है। अतः हम गांधी बाबा की बात मानकर अपने जीवन में उनके आदर्शों को अपनाएँ और अपना जीवन प्रकाशवान बनाएँ। सत्य की राह पर चलें, अच्छी बातों को जीवन में स्थान दें। महात्मा गांधी ने देशहित में अपना जीवन जिया और देशहित में ही अपने जीवन का बलिदान भी दिया, ऐसे गांधी बाबा ने हमारे बीच जन्म लिया, यह हमारा सौभाग्य है।

भरत कुमार गंगादित्य

जन्म : 11 अक्तूबर, 1976
शिक्षा : एम.ए. (हिंदी साहित्य)।
संप्रति : लोक कलाकार, लोक गायक, आकाशवाणी में आकस्मिक उद्घोषक।
लेखन : 'साझा संकलन' में कई रचनाएँ प्रकाशित, स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में कई वर्षों से लेखन।
संपर्क :
ई-मेल—bharatgangaditya@gmail.com

बा के बगैर बापू का क्या वजूद

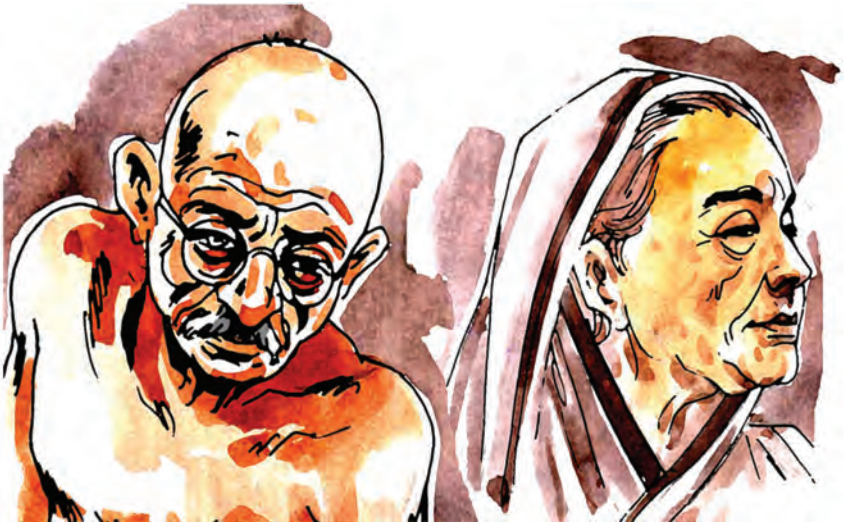

एक बार डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अनायास ही महात्मा गांधी से पूछ लिया, “बापू, अनुभवों के इतने लंबे दौर के बाद भी क्या आप इस धारणा पर अटल हैं कि ईश्वर ही सत्य है?”

“नहीं”, बापू ने तुरंत उत्तर दिया, “अब तो मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि सत्य ही ईश्वर है।...और हम सब उसी ‘सत्य’ की चिनगारियाँ हैं।”

महात्मा गांधी की एक कालजयी कृति है ‘हिंद स्वराज’, जिसके सृजन शताब्दी वर्ष (2009) में चर्चाओं, आयोजनों और नए संस्करणों की जबरदस्त धूम रही। इस छोटी-सी पुस्तक में पाठक और संपादक के संवादों को 20 अध्यायों में इस तरह संजोया गया है कि गांधी-चिंतन का समग्र सार बड़ी ही सहजता से समझा जा सकता है। इसी पुस्तक में एक स्थान पर जब पाठक शंका व्यक्त करता है, “आप जो कहते हैं उससे मुझे लगता है कि सत्याग्रह कमजोर आदमियों के लिए काफी काम का है, लेकिन जब वे बलवान बन जाएँ तब तो उन्हें तोप (हथियार) ही चलाना चाहिए।” तो संपादक रूप में गांधी जी टोकते हैं, “यह तो आपने बड़े अज्ञान की बात कही, सत्याग्रह सबसे बड़ा-सर्वोपरि बल है। वह जब तोपबल से ज्यादा काम करता है तो फिर कमजोरों का हथियार कैसे माना जाएगा? सत्याग्रह के लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिए, वह तोपबल रखने वाले के पास हो ही नहीं सकती।”

इसी के समांतर अपने अनेकानेक अनुभवों से रची गई और आज भी प्रासंगिक बापू की अपनी जीवनी ‘आत्मकथा’ (सत्य के प्रयोग) की प्रस्तावना में भी वे स्पष्ट शब्दों में कह जाते हैं,”...मेरे मन में सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अगणित वस्तुओं का समावेश हो जाता है। यह सत्य स्थूल-वाचिक सत्य नहीं है। यह तो वाणी की तरह विचार का भी है। यह सत्य केवल कल्पित सत्य नहीं है, अर्थात परमेश्वर ही है।”...यही नहीं, ‘आत्मकथा’ के आखिरी पायदान ‘पूर्णाहुति’ में भी वे इसी धारणा को व्यक्त करते हैं कि “सत्य से भिन्न कोई परमेश्वर है, ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया।”

वे शुरुआत में ही जाहिर कर देते हैं कि उनके प्रयोगों में आध्यात्मिक का अर्थ है नैतिक, धर्म का अर्थ है नीति तथा आत्मिक भाव से अपनाई गई नीति है धर्म और ये जीवन मूल्य उन्हें माता-पिता से विरासत में मिले। पिता करमचंद गांधी (पोरबंदर) के बारे में भीतर व बाहर यही मान्यता व्याप्त थी कि वे जितने स्वाभिमानी और क्रोधी थे,

भगवती प्रसाद गौतम

जन्म : 28 सितंबर, 1943

शिक्षा : एम.ए. (चित्रकला), बी.एड.।

राज्य सेवा : अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी के पद से सेवानिवृत्ति।

संप्रति : साहित्य-सृजन के साथ-साथ शैक्षिक-सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय।

सृजन : छोटी-बड़ी आठ पुस्तकों सहित राष्ट्रीय स्तर की हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में गीत, गजल, कविताएँ, लेख, कहानियाँ, व्यंग्य एवं बाल-रचनाएँ निरंतर प्रकाशित; आकाशवाणी से विविध रचनाएँ, वार्ताएँ, परिचर्चाएँ प्रसारित तथा बालगीतों का कैसिट (जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम) लोकार्पित।

संपर्क : मो.– 9461182571

ईमेल– bpgautam.1943@gmail.com

उतने ही सत्य के पक्षधर व निष्ठावान भी रहे। माता पुतलीबाई स्वयं साध्वी व संतोषी प्रवृत्ति की महिला थीं, साथ ही पूजा-पाठ और व्रत-उपवास के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित थीं। वैसे करमचंद गांधी के चार विवाह हुए थे जिनमें अंतिम पत्नी थीं पुतलीबाई। उनकी कोख से एक पुत्री और तीन पुत्रों का जन्म हुआ। उनमें अंतिम संतान थे मोहनदास (दो अक्तूबर, 1869) जिन्हें कालांतर में 'बापू' और 'महात्मा' जैसे स्नेहिल एवं सम्मान्य संबोधन प्राप्त हुए।

खासियत यह है कि सत्य की साधना करते हुए बापू को कई अवसरों पर न कहने लायक बातें भी पूरी ईमानदारी और दृढ़ता से कहनी पड़ीं। उन्हीं के शब्दों में, “यह लिखते हुए मन अकुलाता है कि 13 साल की उम्र (1883) में मेरा विवाह हुआ था। आज मेरी आँखों के सामने 12-13 वर्ष के बालक मौजूद हैं, जिन्हें देखता हूँ और अपने विवाह का स्मरण करता हूँ तो मुझे अपने ऊपर दया आती है और इन बालकों को मेरी स्थिति से बचने के लिए बधाई देने की इच्छा होती है। 13 वर्ष में हुए अपने विवाह के समर्थन में मुझे एक भी नैतिक दलील सूझ नहीं सकती।”

> **“ बापू बा को एक आदर्श स्त्री के रूप में देखना चाहते थे। वे निरक्षर थीं। सीधी, सरल, परिश्रमी किंतु मितभाषी... बहुत कम बोलने वाली। बापू उन्हें साक्षर ही नहीं, सही मायनों में शिक्षित स्त्री बनाना चाहते थे। लेकिन काठियावाड़ी घूँघट प्रथा, बड़ों के सामने पत्नी से दूरी जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों और स्वयं की विषयासक्ति ने अपेक्षित शिक्षा के मार्ग में व्यवधान पैदा किए। उनके सभी प्रयास निष्फल ही साबित हुए और बा मात्र पत्र लिख सकने और सामान्य गुजराती समझ पाने तक ही सीमित रह गईं। ”**

ध्यातव्य है कि इस बाल विवाह से पूर्व बालक मोहनदास की तीन बार सगाई हुई जिनका उन्हें खुद को कोई अता-पता नहीं, सिर्फ इतना सुना था कि दो कन्याएँ एक के बाद एक चल बसीं और तीसरी सगाई हुई सात वर्ष की आयु के आस-पास कस्तूरबाई के साथ। हाँ, उन्हें विवाह का स्मरण जरूर है। उस समय विवाह जैसी रीति का बाल सुलभ शौक मन में लिए मंडप के क्रियाकलाप पूरे किए, सात फेरे लिए, एक-दूसरे को कंसार (गेहूँ से बनी पारंपरिक खाद्यवस्तु) खाया-खिलाया, घर पहुँचे और बस, वर-वधू साथ रहने लगे। दो अबोध बालक भवसागर में कूद पड़े- कस्तूरबाई और मोहनदास... (अब पाठकों के लिए बा और बापू)।

मन में अजीब-सा भय, साथ ही कुछ लाज-शरम भी, भाभी की सीख-सिखावन सब जाती रही। खैर, जान-पहचान हुई ही उम्र में दोनों बराबर-से। वैसे कस्तूरबाई लगभग छह माह बड़ी, मगर मोहन पर पति-सत्ता का भूत सवार होने लगा। बाद में बापू ने स्वीकार भी किया- “यह बात हमारे बीच दुखद झगड़े की जड़ बन गई।...हम बालकों के बीच बोलचाल का बंद होना एक मामूली चीज हो गई। कस्तूरबाई ने जो स्वतंत्रता बरती, उसे मैं निर्दोष मानता हूँ। जिस बालिका के मन में पाप नहीं है, वह देव-दर्शन के लिए जाने पर या किसी से मिलने जाने पर दबाव क्यों सहन करे? अगर मैं उस पर दबाव डालता हूँ तो वह भी मुझ पर क्यों न डाले? यह तो अब समझ में आ रहा है।”

ऐसा नहीं है कि इससे उनके आपसी रिश्तों में कटुता अथवा खटास आती हो। वस्तुतः बापू बा को एक आदर्श स्त्री के रूप में देखना चाहते थे। वे निरक्षर थीं। सीधी, सरल, परिश्रमी किंतु मितभाषी...बहुत कम बोलने वाली। बापू उन्हें साक्षर ही नहीं, सही मायनों में शिक्षित स्त्री बनाना चाहते थे। लेकिन काठियावाड़ी घूँघट प्रथा, बड़ों के सामने पत्नी से दूरी जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों और स्वयं की विषयासक्ति ने अपेक्षित शिक्षा के मार्ग में व्यवधान पैदा किए। उनके सभी प्रयास निष्फल ही साबित हुए और बा मात्र पत्र लिख सकने और सामान्य गुजराती समझ पाने तक ही सीमित रह गईं।...और यह भी कि स्वयं की छोटी-सी भूल और पिता की मृत्यु से बापू को जो आघात लगा, वह तो अपनी जगह था ही, किंतु बाद में कस्तूरबा की कोख से जो शिशु जन्मा, वह भी दो-चार दिन में ही चल बसा। बापू ने आत्मकथा में स्पष्ट संकेत किया, “कोई दूसरा परिणाम हो भी क्या सकता था? जिन माँ-बापों को अथवा जिन बाल दंपति को चेतना हो, वे इस दृष्टांत से चेतें।”

सुमित्रा कुलकर्णी (महात्मा गांधी की पौत्री) का एक लेख किसी अखबार में पढ़ने को मिला। उन्होंने अपनी युवावस्था के दिनों की एक घटना का जिक्र करते हुए लिखा था, “मुझे याद है, 16वें जन्म दिन पर मैं बापू को प्रणाम करने गई। बापू ने कहा, एक बात याद रखना, किसी से डरना मत। निर्भय होकर जीना, ढेर सारी बुराइयों से बच जाओगी...सच, बापू चाहते थे, हर व्यक्ति अपनी अतिरिक्त शक्ति को जगाए, हीन भावना से बचे। जीवन सरल, आडंबरमुक्त, अपेक्षारहित हो तो कौन दुख दे सकता है?”

बापू का सान्निध्य पाकर ये सब मूल्यपरक वृत्तियाँ बा के जीवन में आ उतरी थीं। वे बापू के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलीं। आजादी की लड़ाई में कई बार आगे बढ़कर मोर्चा सँभालने में भी पीछे नहीं रहीं। बा-बापू के गृहस्थ जीवन के 61 वर्ष (1883-1944) का सफर निर्बाध गति से चला। वस्तुतः आंदोलन के चलते बापू के साथ बा को भी आगा खाँ महल में बंदी बनाकर रखा गया। उसी दौरान लंबी बीमारी की वजह से अंग्रेज़ सरकार ने अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए बा को मुक्त करने का प्रस्ताव रखा, मगर बा ने यह कहकर उसे ठुकरा दिया कि जब देश की असंख्य महिलाएँ जेलों में बंद हैं तो मैं कैसे मुक्त हो सकती हूँ?”

यों बापू बालपन से ही शारीरिक दृष्टि से कमजोर तो थे ही, किशोरावस्था तक भी चोर, भूत, साँप आदि का भय उन्हें घेरे ही रहता था। रात्रि को कहीं अकेले निकलना, अँधेरे का सामना करना, रोशनी के बिना शयन कर पाना बहुधा उनके लिए कठिन ही रहा। लेकिन भीतर-ही-भीतर हीन भावना के चलते वे ऐसी बातें बा से भी साझा नहीं कर पाते थे, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि उनकी अर्धांगिनी कहीं ज्यादा मजबूत और साहसी है, साँप जैसे जीवों से डरना तो उन्होंने कभी जाना ही नहीं। मगर आगे चलकर कस्तूरबा की यही स्वच्छंदता, निर्भीकता और दृढ़ता सत्याग्रही बापू की ढाल भी बनी और हथियार भी। डॉ. प्रकाश मनु ने अपनी पुस्तक 'जो खुद कसौटी बन गए' के एक अध्याय में इस विचार को रेखांकित किया है कि "महात्मा गांधी देश की राजनीति के लिए इतना बड़ा काम इसीलिए कर पाए क्योंकि उन्हें कस्तूरबा जैसी दृढ़निश्चयी स्त्री का साथ मिला।... बिलकुल साधारण-सी दिखने वाली इस स्त्री में इतना बड़ा मन और इतना आत्मविश्वास था कि उसे याद करके आज भी हम हैरान रह जाते हैं।"

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद नीति के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए बापू एक नया प्रतीकात्मक शब्द चाहते थे। उसी उद्देश्य से संपन्न एक प्रतियोगिता के जरिए 11 सितंबर, 1906 को 'सत्याग्रह' शब्द को मान्यता प्राप्त हो गई। यह सत्याग्रह ब्रिटिश सरकार के उन कानूनों के विरुद्ध था जिनमें हर भारतीय (बड़े व बच्चे) नागरिक पर तीन पाउंड का वार्षिक कर लगाना, भारतीय रस्मों से संपन्न शादियों को अवैध ठहराना शामिल था और ऐसी कुछ और भी बातें थीं जिनकी वजह से वहाँ भारतीयों का जीवनयापन असंभव हो सकता था। आंदोलन के साथ ही गोरी सरकार की दमनकारी कार्यवाही शुरू हो गई। सत्याग्रही पुरुषों व स्त्रियों से जेलें भर गईं। कुछ मौतें भी हुईं, लेकिन आंदोलनकारी डिगे नहीं। अंततः सरकार ने ही हथियार डाल दिए और बापू के अहिंसक अभियान की जबरदस्त जीत का डंका बज गया।

इस ऐतिहासिक लड़ाई के बाद 1915 में बापू भारत लौटे। यहाँ उन्होंने देश के दूर-दराज के क्षेत्रों का भ्रमण किया और 1917 में बिहार के चंपारण जिले में सत्याग्रह का प्रथम पौधरोपण किया। दरअसल चंपारण का कृषक वर्ग अंग्रेज़ मालिकों के लिए जमीन के एक निश्चित भाग में नील की खेती करने को बाध्य था। उसमें नुकसान ज्यादा था और बचने का कोई रास्ता नहीं। तब उन्हें बापू याद आए। राजकुमार शुक्ल नामक किसान के साथ वे चंपारण पहुँचे, प्रशासन को अपने उद्देश्य से अवगत कराया और वस्तुस्थिति की जाँच में जुट गए। तभी कमिश्नर ने उन्हें चंपारण छोड़ने का आदेश दिया, पर बापू कब मानने वाले थे। बोले, "पीड़ितों की मदद करना मेरा धर्म है। मैं चंपारण नहीं छोड़ूँगा। कानून तोड़ा है तो मैं सजा भुगतने को तैयार हूँ।" किंतु निजी स्तर पर सारी तैयारी कर लेने के बाद सजा सुनने के लिए कोर्ट जाने का समय हुआ, उससे पहले ही मजिस्ट्रेट का आदेश मिला कि गवर्नर साहब की आज्ञा से मुकदमा वापस ले लिया गया है और बाद में कलेक्टर का पत्र भी प्राप्त हो गया जिसमें आवश्यक मदद का आश्वासन भी दिया गया था।

उल्लेखनीय है कि असहयोग आंदोलन (1921-22), बारडोली सत्याग्रह (1928), नमक सत्याग्रह (1930) और अगस्त क्रांति (1942) जैसे आंदोलनों ने ऐसा माहौल बनाया, विरोध एवं विजय की ऐसी परंपरा कायम की कि अंग्रेजों को 15 अगस्त, 1947 को भारत छोड़ना पड़ा। ...और विशेषता यह कि बापू की हर रीति-नीति में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में बा पूरी निष्ठा से उनके साथ तत्पर खड़ी नजर आईं।

हाँ, पारिवारिक जीवन में कई बार ऐसे भी मौके आए जब बा-बापू के बीच तनाव की स्थिति बनी। एक बार डरबन (दक्षिण अफ्रीका) में आपसी तकरार के चलते बापू ने बा को पकड़कर घर से बाहर कर दिया। वे भी क्रोध में बोलीं, "आपको तो शर्म नहीं है, मुझे है। मैं बाहर निकलकर कहाँ जा सकती हूँ, इधर मेरे माता-पिता हैं क्या?" ऐसे में बापू की स्वीकारोक्ति खासतौर पर दृष्टव्य है। वे लिखते हैं, 'यदि पत्नी मुझे नहीं छोड़ सकती थी तो मैं भी उसे छोड़कर कहाँ जा सकता था। हमारे बीच झगड़े बहुत हुए, पर परिणाम सदा शुभ ही रहा। पत्नी ने सदा अपनी अद्भुत सहनशक्ति द्वारा विजय प्राप्त की।'

इसी प्रकार अस्वस्थ होने पर चिकित्सक के बार-बार कहने पर भी कस्तूरबा ने मदिरा व मांस का सेवन नहीं किया, सो नहीं ही किया और बापू ने भी सब कुछ उन्हीं की इच्छा और आस्था पर छोड़ दिया। सच तो यही है कि उनकी दृष्टि में बा की मान्यता ही सर्वोपरि रही।

एक साक्षात्कार में अपने प्रिय दादा-दादी को याद करते हुए तारा गांधी भट्टाचार्य ने कहा था, "लंबी बीमारी के बाद जब बा की मृत्यु हो गई तो बापू को हमने पहली बार मुस्कानविहीन देखा। ...वह साधारण पत्नी नहीं थीं। बापू की आजादी की लड़ाई में बा भी बराबर की हिस्सेदार थीं।"

सच तो यही है कि बा और बापू एक-दूसरे के पूरक थे। उनके मन में पति-सेवा का जो भाव था, वह प्रेम से और प्रबल हो गया था। बापू ने भी स्वीकार किया था कि उनको बड़ा बनाने में बा का बहुत बड़ा हाथ है। यदि यों कहें कि बा के बगैर बापू का क्या वजूद? तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन दोनों महान आत्माओं के प्रति श्रद्धा-स्वरूप एक दोहा बरबस ही उतर आया है—

"बा-बापू सचमुच हुए मूरतिमान मनीष।
जड़े फ्रेम में आज भी देते हैं आशीष।"

लोक संस्कृति की विस्मृत नाट्य-कृति

नकटौरा

डॉ. रश्मि शील

जन्म : मनिकापुर, जिला उन्नाव, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी, समाजशास्त्र), बी.एड.

संप्रति : राज्य संपत्ति विभाग, उ.प्र. प्रशासन में कार्यरत

लेखन एवं प्रकाशन : 'कोख जाये' अवधी कहानी संग्रह, वसंत अभ्यास माला भाग-1, 2, 3, देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी, समीक्षा, लेख आदि प्रकाशित, दूरदर्शन एवं आकाशवाणी, लखनऊ से समय-समय पर रचनाओं का प्रसारण, सी.एम.एस. कम्युनिटी रेडियो से रचनाओं का प्रसारण।

संपर्क : मो.– 9235858688

ईमेल– rashmisheel.shukla@gmail.com

चारों तरफ अंधकार छाया है, सन्नाटा पसरा हुआ है। इसी के मध्य एक आवाज गूँजती है–"ऐ बुढ़ऊ! जो कुछ छुपा कर रखा है, सब हमें सौंप दे।" घर के बाहर मैदान में सोया बुजुर्ग जाग जाता है। अपने सामने बंदूकधारी नकाबपोशों को देखकर उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है। काँपती हुई आवाज में कहता है, "मेरे पास कुछ नहीं है। घर में भी कोई नहीं है।"

"चुप, हमें न बताओ। हमें सब पता है। आज तुम्हारे परपोते की शादी है। सब मर्द लोग बारात गए हुए हैं, मगर औरतें तो घर में हैं। चलो, जल्दी से दरवाजा खुलवाओ और उनके गहने हमारे हवाले कर दो।" यह सुनकर बुजुर्ग की हालत खराब हो जाती है।

"उठते हो कि दरवाजा तोड़ दें।" फिर धमकी आई।

बुजुर्ग कुछ कहे, उससे पहले ही दरवाजे के अंदर से हँसने की आवाज बाहर आकर बिखर गई, "अरे भौजी, काहे दादा को परेशान कर रही हो!"

"ओह, तो ये बात है।" उन्होंने लाठी उठाई और घर के भीतर घुस चुके नकाबपोशों की ओर दौड़ पड़े, लेकिन दादा दरवाजे पर पहुँच कर रुक गए। आगे उनका प्रवेश वर्जित था। वे मुस्करा कर रह गए। अंदर से गीत के बोल सुनाई दे रहे थे–"नदी नारे न जाओ, श्याम पैयाँ परूँ।..."

यह दृश्य 'परफॉर्मिंग आर्ट' का वह नमूना है, जो लोक की उर्वर चेतना और भाव-बोध की परिणति है। जी हाँ, बात हो रही है नकटौरा की जो पूर्णरूपेण स्त्री-प्रदर्शन से संबंधित लोक-विधा है, जिसमें मुद्दे तो हैं पर पहचान नगण्य है। नकटौरा लोकनाट्य परंपरा की वह विधा है, जो अब लगभग लुप्तप्राय है।

रामलीला, रासलीला, जात्रा, भवाई, कीतर्नियाँ, बिदेसिया नाच, माच तमाशा, स्वाँग, नौटंकी की तरह ही नकटौरा भी लोक नाट्य परंपरा का एक अंग है। देश के अलग-अलग अंचलों के ये विशेष नाटक वहाँ की संस्कृति, परंपरा, सोच, सामाजिक मूल्य, आस्था व विश्वास का प्रतिनिधित्व करते हैं।

लोक-नाट्य कलाओं का उत्स कहाँ से है, यह सही-सही कह पाना मुश्किल है, परंतु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि समस्त साहित्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान और अन्यान्य विकसित कलाओं का प्रादुर्भाव लोक-विधाओं यानी कला, गीत, कथा आदि से हुआ है। लोक-विधाओं के मूलाधार सामाजिक संरचना के अंतर्द्वंद्वों में विकसित होते हैं, इसलिए जीवन की यथार्थपरक दृष्टियाँ भी इसमें परिलक्षित होती हैं।

लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक नृत्य के समान ही लोक नाटक भी जन जीवन में इस

तरह रचे-बसे हैं कि इनके बिना जीवन के आनंद की कल्पना ही नहीं की जा सकती, क्योंकि ये मनोरंजन के साथ ही लोक जीवन की विवेचना भी करते हैं। इस संबंध में प्रो. चंद्रदेव यादव का कथन महत्वपूर्ण है—"धर्म और धार्मिक अनुष्ठान और अन्यान्य शास्त्रीय क्रियाएँ लोक में अंतर्भुक्त होकर लोक धर्म बन जाती हैं। इसीलिए लोक समाज में किसी आचरण और व्यवहार का मानदंड जितना शास्त्र होता है, उतना ही लोक भी। भारतीय समाज में लोक और वेद विरुद्ध आचरण को हेय और त्याज्य माना गया है। लोक सिद्ध वेद विरुद्ध हो सकता है, किंतु लोक विरुद्ध नहीं। लोक गीत और लोक नाटक लोक जीवन के सामूहिक रचनात्मक विवेक के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।"

लोक नाटक और लोक गीत दोनों ही जीवन जीने की जद्दोजहद में लगे लोगों के मनोरंजन का सुलभ साधन हैं। इसीलिए ये जीवन के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। आचार्य भरतमुनि (दूसरी से चौथी शताब्दी ई. के मध्य) भी स्वीकार करते हैं कि "नाटक मात्र लोगों के मनोरंजन के लिए ही नहीं है, बल्कि जीवन में गहरी आस्था भी पैदा करता है। यही जीवनास्था लोक को संघर्ष से जोड़ती है। यही संघर्ष मेहनतकशों की संस्कृति से जुड़ता है—एक ऐसी संस्कृति जो हमारी स्मृतियों में पलती है, चेतना में विकसित होती है और वाचिक परंपरा के माध्यम से पुरानी पीढ़ी आने वाली पीढ़ी को दे जाती है। यह एक ऐसी सांस्कृतिक विरासत है जिसके सुर हमारे जीवन में स्पंदित होते रहते हैं, जिन्हें हम लोक विधा में अपनी इच्छा और जरूरतों के अनुसार समेटते हैं और विकसित करते हैं। लोक गीत, लोक नृत्य, लोक कथाएँ या लोक नाटक इसी प्रकार की समृद्ध वाचिक परंपराएँ हैं।

उत्तर भारत में नौटंकी और नकटौरा दो जनरंजन के विशिष्ट साधन हैं। विभिन्न विषयों पर आधारित नौटंकी में पुरुषों की भूमिका प्रधान होती है। नौटंकी खुले मैदान में खेली जाती है, जिसमें स्त्रियों का प्रवेश प्रायः वर्जित होता है। यहाँ तक कि स्त्री पात्रों की भूमिका का निर्वाह भी अकसर पुरुषों द्वारा किया जाता है। इसीलिए शायद स्त्रियों ने अपने लिए एक अलग तरह का नाट्य स्वरूप विकसित किया, जो घर के भीतर पूरी तरह स्त्रियों द्वारा अभिनीत होता है। नौटंकी के बरक्स इसमें पुरुष पात्रों की भूमिका स्त्रियों द्वारा अभिनीत की जाती है। इस नाट्य विधा को 'नकटौरा' नाम दिया गया जो स्त्रियों के लिए स्त्रियों द्वारा खेला गया स्त्रियों का लोक नाटक है। 'नकटौरा' संभवतः नाटिका का ही अपभ्रंश है। इसीलिए कहीं-कहीं इसे 'नटकौरा' भी कहा जाता है, और कहीं-कहीं पर 'जलुआ'।

नटकौरा अथवा नकटौरा में गीतों का बाहुल्य होता है। इन नकटा गीतों की कोई विशिष्ट विधा या शैली नहीं होती, परंतु ये मनोरंजन से भरपूर होते हैं। अस्तु नकटौरा को एक तरह गीतपरक नृत्य नाटिका कहा जा सकता है जो पूरी तरह से स्त्री-प्रधान है जिसको खेलने वाली भी स्त्रियाँ और दर्शक भी स्त्रियाँ होती हैं। यह लोक नाट्य का वह स्वरूप है, जिसमें संभ्रांत महिलाओं की भी सक्रिय भागीदारी होती है।

लोक नाटकों की कोई व्यवस्थित रूपरेखा नहीं होती है। ये प्रायः ईश वंदना, अथवा ईश स्तुति से शुरू होते हैं। रूप विधान के साथ-साथ नृत्य व गीतों का समावेश होता है। कभी-कभी विदूषक अपनी हास्यपूर्ण भंगिमाओं से दर्शकों का मनोरंजन करता है। नाटक फिर शुरू हो जाता है। नकटौरा इससे भी अधिक व्यवस्थित होता है। कोई स्क्रिप्ट नहीं, कोई निर्देशक नहीं। रूप-सज्जा, मंच-सज्जा किसी की जरूरत नहीं पड़ती। न कोई संवाद योजना, न देशकाल का विचार, न वातावरण की बंदिश। यहाँ तक कि पात्रों का चुनाव भी पहले से नहीं होता। बस, समझ लीजिए कि खुले आँगन में मंडप के नीचे रातभर में जीवन का स्वाँग रचा जाता है। यह मंडप भी नकटौरा के लिहाज से नहीं छाया जाता है वरन् लड़के के विवाह-संस्कार में रीति-निर्वाह के लिए बनाया जाता है। प्रायः चाकी-काड़ी परंपरा (जिसमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ लड़के के उबटन लगाती हैं) के दिन या उसके बाद मंडप बनाया जाता है। वही मंडप नकटौरा का मंच बन जाता है।

नकटौरा लड़के के विवाहोत्सव की रात्रि को खेला जाता है। लड़के की शादी में सामान्यतः सभी परिजन-पुरजन बारात में चले जाते हैं। घर में बहुत बुजुर्ग या बहुत छोटे बच्चे और स्त्रियाँ रह जाती हैं। घर की सुरक्षा के लिए रात्रि जागरण करना पड़ता है। जागरण के लिए गीत-संगीत का आयोजन किया जाता है। चूँकि वहाँ पुरुष समाज उपस्थित नहीं है, तो स्त्रियाँ स्वच्छंद हो जाती हैं। वे निर्द्वंद्व भाव से तमाशा करती हैं, स्वाँग रचाती हैं। नृत्य, गीत, संगीत से युक्त यह तमाशा ही नकटौरा है।

एकदम सहज भाव से सीधे-सादे ढंग से खेले जाने वाला नकटौरा जीवन के रंग बिखेरते हुए आनंदित करता है। एक तरह से अपनी औघड़ कहन से फार्मूलाबद्ध प्रदर्शनकारी कलाओं को धता बताती हुई ये स्त्रियाँ कथ्य, शिल्प और लयात्मकता के अनूठे लोकधर्मी प्रयोग गढ़ती हैं। सामान्यतः नकटौरा का आरंभ देवी गीत से शुरू होता है—

कामना पूरन करौ माई
पूरना पूरन करौ माई
सो मोरी अंबे काहे का बना है भवनवा
काहे के चार खंभे लगे माई। कामना...
सो मोरी अंबे सोने का बना है भवनवा
चाँदी के चार खंभे लगे माई। कामना...

देवी गीत के पश्चात नकटौरा शुरू होता है। नकटौरा करना और देखना दोनों बड़ा दिलचस्प होता है। इसमें एक तरफ गीत गायन होता है तो दूसरी तरफ कुछ स्त्रियाँ नृत्य करने लगती हैं। साथ ही, इनका

स्वाँग चलता रहता है। गाँव की कुछ प्रगल्भ स्त्रियाँ स्वतः अभिनेत्री बन जाती हैं और कोई प्लॉट बना लेती है। प्रायः विवाह का रूपक रचा जाता है और कृत्रिम विवाह का नाट्य-रूप प्रस्तुत किया जाता है। समस्त स्त्री समूह दो खेमों में बँट जाता है- एक वर पक्ष होता है तथा दूसरा वधू पक्ष का। यूँ तो ऐसी कोई निश्चित रूपरेखा नहीं होती कि कौन-सी स्त्री किस भूमिका में होगी, परंतु वर-वधू के रूप में अकसर नंद-भाभी या देवरानी-जिठानी को देखा जाता है। कभी-कभी कोई स्त्री जमींदार, मास्टर, दरोगा या चौकीदार बन जाती है। मंडप में फेरों के पहले ही वर पक्ष कार, साइकिल या नकद रुपयों की माँग कर देता है। वधू बनी स्त्री विवाह से इनकार कर देती है। दोनों ओर से सवाल-जवाब के गीत शुरू हो जाते हैं। इसी तरह जीवन की अनेक छोटी-छोटी घटनाओं का सृजन किया जाता है। कभी पुरुष बनी स्त्री दूसरी स्त्री से प्रेमालाप करती है, प्रेम प्रदर्शन करती है। इसी समय दूसरी स्त्रियाँ ढोलक की थाप पर नकटा गीत शुरू कर देती हैं—

होने न पाई सखी संझा
बलम रसिया बन के आय गयो रे।
बागों गई थी संग गए बलमा
तोड़ न पाई चार कलियाँ
बलम रसिया बन के आय गयो रे।

इसी गाने के बीच ही अचानक कोई स्त्री गर्भवती के रूप में आकर रंग में भंग डाल देती है कि पुरुष बहुत बेवफा होते हैं, इनके झाँसे में न आना। ये मर्द किसी एक स्त्री के प्यार में बँध कर नहीं रह सकते। वह पुरुष पति को उलाहना देती है—

मैं तो चंदा जैसी नार, राजा क्यों लाए सौतनियाँ
मैं तो तेरे गले का हार, राजा क्यों लाए सौतनियाँ।
जो मैं होती छोटी-मोटी, तो लाते सौतनियाँ।
मैं तो तेरे कंधे पार राजा क्यों लाए सौतनियाँ।

प्रेम प्रसंग, विवाह संस्कार, गर्भवती होने का स्वाँग, डॉक्टर और नर्स की भूमिका सुरक्षित प्रसव, नवजात शिशु की देखभाल, टीकाकरण, मातृत्व-सुख के साथ-साथ दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, बेमेल विवाह आदि अनेक सामाजिक समस्याओं सहित जीवन के विविध पहलुओं से जुड़ी सीख, हँसी-ठिठोली के बीच दी जाती है। इस ठिठोली के बीच जो खास है, वह है गीत संयोजन। कुछ गीतों की विषय-वस्तु विशुद्ध हास्य से परिपूर्ण होती है—

भिंडी की हो गई सगाई।
सकरकंद नाचन को आई।।
आलू बेचारा बराती बना है।
कद्दू बना दूल्हा-भाई।।

नकटौरा की प्रस्तुति की योजना तत्काल बनाई जाती है। इसलिए परिस्थिति और मनःस्थिति के अनुसार इसकी विषय-वस्तु भी बदली रहती है और बदल जाता है नकटा गीत भी। एक उदाहरण— जो स्त्री नकटौरा में वधू की भूमिका में है, उसका पति उसकी नहीं सुनता और अपनी माँ के कहने में आकर पत्नी को प्रताड़ित करता रहता है। आम बोल-चाल की भाषा में पत्नी के कहने में चलने वाले पुरुष को 'जोरू का गुलाम' तथा माँ के अधिक नजदीक होने वाले पुरुष के लिए 'दूध पीता बच्चा' जैसी अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसी बात को नकटा में देखिए—

सैंया मिले लरिकैयाँ, मैं का करूँ!
बारा बरस की मैं ब्याह के आई
सैंया चले पैयाँ-पैयाँ, मैं का करूँ!
अट्ठरह बरस की मैं गौने में आई
सैंयाँ बुलाए मैया-मैया, मैं का करूँ!

नकटौरा में अभिनय, अभिनय नहीं होता, परंतु जो भी होता है जीवन से जुड़ा होता है, सामाजिक विषयों से जुड़ा होता है। शास्त्रीय नाटकों में जो स्थान एकांकी का है, लोक नाटकों में वही जगह नकटौरा की होती है। नकटौरा खेलने के अनेक सामाजिक व व्यावहारिक पहलू हैं। एक ओर तो यह स्त्रियों को कुंठित मनोवृत्ति से मुक्ति प्रदान करता है तो दूसरी ओर इसमें प्रेम व मस्ती के साथ वर-वधू के लिए आशीर्वाद का भाव निहित रहता है। संक्षिप्त अभिनय से स्त्रियाँ अपने अंर्द्वद्व को न केवल प्रकट करती हैं, बल्कि बेबाकी से जीवन की आलोचना भी करती चलती हैं।

नकटौरा की भाषा मुख्य रूप से जनपदीय होती है, परंतु पात्रानुसार विविधता भी दिखाई देती है। जैसे कि सिपाही, दरोगा, जमींदार जैसे पात्र अपने संवाद में खड़ी बोली या टूटी-फूटी अंग्रेजी का प्रयोग कर लेते हैं।

निष्कर्षतः नकटौरा स्त्रियों का शुद्ध ठाठ है। इसमें शामिल फूहड़ता, अश्लीलता इसका नकारात्मक पक्ष है। इसीलिए इसका सार्वजनिक प्रदर्शन नहीं हो पाता। एक तरह से यह घर की चहारदीवारी के अंदर अभिनीत तमाशा बन कर रह गया है। इससे भी अधिक दुख इस बात का है कि अब तो यह लोक नाटक लोक जीवन से लुप्त होता जा रहा है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने हमारी लोक संस्कृतियों, परंपराओं पर काफी आघात किए हैं। शहरीकरण के कारण जनपदीय लोक कलाओं का पतन हुआ है। पहले भी किशोरियों को नकटौरा देखने की मनाही होने के कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने से यह नाट्य कला वंचित रह गई। बदलते समय में शादियों में अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्त्रियों के बारात जाने का प्रचलन बढ़ गया है जिसके कारण नकटौरा खेलने की परंपरा खत्म-सी हो रही है।

परंतु आशा की एक किरण चमकी है। केंद्र सरकार का संस्कृति मंत्रालय नकटौरा के पुनः प्रचलन में सक्रिय भूमिका अदा कर रहा है। उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद में इसका सफल आयोजन करवाया गया है।

लियो टॉल्स्टॉय

तीन पुरुषों ने मेरे जीवन पर बहुत ही बड़ा प्रभाव डाला है। उसमें पहला स्थान मैं रायचन्द कवि को देता हूँ, दूसरा टॉल्स्टॉय को और तीसरा रस्किन को। टॉल्स्टॉय और रस्किन के दरम्यान स्पर्धा खड़ी हो और दोनों के जीवन के विषय में मैं अधिक बातें जान लूँ। नहीं जानता कि उस हालत में प्रथम स्थान मैं किसे दूँगा, परंतु अभी तो दूसरा स्थान टॉल्स्टॉय को देता हूँ। टॉल्स्टॉय के जीवन के विषय में बहुतेरों ने जितना पढ़ा होगा उतना मैंने नहीं पढ़ा है। ऐसा ही कह सकता हूँ कि उनके लिखे हुए ग्रंथों का वाचन भी मेरा बहुत कम है। उनकी पुस्तकों में से जिस किताब का प्रभाव मुझ पर बहुत अधिक पड़ा, उसका नाम है 'द किंग्डम ऑफ गॉड इज विदिन यू'। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर का राज्य तुम्हारे हृदय में है। उसे बाहर

खोजने जाओगे तो वह कहीं न मिलेगा। इसे मैंने 40 वर्ष पहले पढ़ा था। उस वक्त मेरे विचार कई बातों में शंकाशील थे। कई मर्तबा मुझे नास्तिकता के विचार भी आते थे। विलायत जाने के समय तो मैं हिंसक था, हिंसा पर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसा पर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढ़ने के बाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैंने उनके दूसरे कई एक ग्रंथ पढ़े, उनमें से प्रत्येक का क्या प्रभाव पड़ा सो मैं नहीं कह सकता, परंतु उनके समग्र जीवन का क्या प्रभाव पड़ा, वह तो कह सकता हूँ।

उनके जीवन से मैं अपने लिए दो बातें भारी समझता हूँ। वह जैसा कहते थे वैसा ही करने वाले पुरुष थे। उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही, वह अमीर वर्ग के मनुष्य थे। इस जगत के छप्पन भोग उन्होंने भोगे थे। धन-दौलत के विषय पर मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हें मिला था। फिर भी उन्होंने भरी जवानी में अपना ध्येय बदला। दुनिया के विविध रंग देखने पर भी, उनके स्वाद चखने पर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इनमें कुछ नहीं है तो उनसे मुँह मोड़ लिया और अंत तक अपने विचारों पर पक्के रहे। इससे मैंने एक जगह लिखा है कि टॉल्स्टॉय युग की सत्य की मूर्ति थे। उन्होंने सत्य को जैसा माना वैसा ही पालने का उग्र प्रयत्न किया। लोगों को दुख होगा या अच्छा लगेगा कि नहीं, इसका विचार किए बिना ही उन्हें जिस माफिक जो वस्तु दिखाई दी, उसी माफिक कह सुनाई। टॉल्स्टॉय अपने युग के लिए अहिंसा के बड़े भारी प्रवर्तक थे। अहिंसा के विषय में जितना साहित्य टॉल्स्टॉय ने लिखा है, जहाँ तक मैं जानता हूँ, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसी ने नहीं लिखा है और उससे भी आगे जाकर मैं तो यह कहता हूँ कि अहिंसा का सूक्ष्म दर्शन जितना टॉल्स्टॉय ने किया था और उसका पालन करने का जितना प्रयत्न टॉल्स्टॉय ने किया था, उतना प्रयत्न करने वाला आज हिंदुस्तान में भी कोई नहीं। ऐसे किसी आदमी को मैं नहीं जानता।

मेरे लिए यह दशा दुखदायक है, मुझे यह भाती नहीं है। हिंदुस्तान कर्मभूमि है।

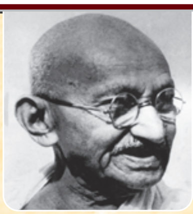

मोहनदास करमचंद गांधी

(दो अक्तूबर, 1869 – 30 जनवरी, 1948)

गांधी जी एक सफल लेखक थे। कई दशकों तक उन्होंने अनेक पत्रों का संपादन किया, जिसमें हरिजन, इंडियन ओपिनियन, यंग इंडिया आदि सम्मिलित हैं। जब वे भारत वापस आए तब उन्होंने 'नवजीवन' नामक मासिक पत्रिका निकाली। बाद में नवजीवन का प्रकाशन हिंदी में भी हुआ। इसके अलावा उन्होंने लगभग हर रोज व्यक्तियों और समाचार पत्रों को पत्र लिखा। गांधी जी द्वारा मौलिक रूप से लिखित चार पुस्तकें हैं–हिंद स्वराज, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, सत्य के प्रयोग (आत्मकथा), तथा गीता पदार्थ कोश सहित संपूर्ण गीता की टीका। गांधी जी आमतौर पर गुजराती में लिखते थे, परंतु अपनी किताबों का हिंदी और अंग्रेजी में भी अनुवाद करते या करवाते थे।

हिंदुस्तान में ऋषि-मुनियों ने अहिंसा के क्षेत्र में बड़ी-से-बड़ी खोजें की हैं : परंतु हम केवल बुजुर्गों की ही प्राप्त की हुई पूँजी पर नहीं निभ सकते। उसमें यदि वृद्धि न की जाए तो हम उसे खा जाते हैं। इस विषय में न्यायमूर्ति रानाडे ने हमें सावधान कर दिया है। वेदादि साहित्य में से या जैन-साहित्य में से हम बड़ी-बड़ी बातें जितनी करते रहें अथवा सिद्धांतों के विषय में चाहे जितने प्रमाण देते रहें और दुनिया को आश्चर्य-मग्न करते रहें, फिर भी दुनिया हमें सच्चा नहीं मान सकती। इसलिए रानाडे ने हमारा धर्म यह बताया है कि हम इस पूँजी में वृद्धि करते जाएँ। दूसरे धर्म-विचारकों ने जो लिखा हो, उसके साथ मुकाबला करें, ऐसा करने में कुछ नया मिल जाए या नया प्रकाश मिलना हो तो उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए, किंतु हमने ऐसा नहीं किया। हमारे धर्माध्यक्षों ने एक पक्ष का ही विचार किया है। उनके पठन, कथन और बरतन में समानता भी नहीं है। प्रजा को अच्छा लगे या नहीं, जिस समाज में वे स्वयं काम करते थे उस समाज को भला या बुरा, फिर भी टॉल्स्टॉय के समान खरी-खरी सुना देने वाले हमारे यहाँ नहीं मिलते। हमारे इस अहिंसा-प्रधान देश की ऐसी दयाजनक दशा है।

“ हमारे जीवन में कभी विरोध आने वाला ही नहीं, अगर हम यह दिखलाना चाहें तो हमें मरा ही समझें। ऐसा करने में अगर कल के कार्य को याद रखकर उसके साथ आज के कार्य का मेल करना पड़े तो कृत्रिम मेल में असत्याचरण हो सकता है। सीमा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना चाहिए। ”

हमारी अहिंसा की निंदा ही योग्य है। खटमल, मच्छर, बिच्छू, पक्षी और पशुओं को हर किसी तरह से निभाने में ही मानो हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। वे प्राणी कष्ट में तड़पते हों तो उसकी भी हमें चिंता नहीं, परंतु दुखी प्राणी को कोई प्राण-मुक्त करे अथवा हम उसमें शरीक हों तो उसमें हम घोर पाप मानते हैं। ऐसा मैं लिख चुका हूँ कि यह अहिंसा नहीं है। टॉल्स्टॉय का स्मरण कराते हुए फिर कहता हूँ कि अहिंसा का यह अर्थ नहीं है। अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र, अहिंसा का अर्थ है वैर-भाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरुता न हो, डर-डर के भागना न हो। अहिंसा में दृढ़ता, वीरता, निश्चलता होनी चाहिए।

यह अहिंसा हिंदुस्तान में शिक्षित समाज में दिखाई नहीं देती। उनके लिए टॉल्स्टॉय का जीवन प्रेरक है। उन्होंने जो वस्तु मान ली, उसका पालन करने में भारी प्रयत्न किया और उससे कभी डिगे तक नहीं। मैं यह नहीं मानता कि उन्हें वह हरी छड़ी (सिद्धि) न मिली हो। ‘नहीं मिली’ यह तो उन्होंने स्वयं कहा है। ऐसा कहना उनको सुहाता था, परंतु यह मैं नहीं मानता कि उन्हें वह छड़ी न मिली हो, जैसा कि उनके टीकाकार लिखते हैं। मैं यह मान सकता हूँ कि यदि कोई कहे कि उन्होंने सब तरह से उस अहिंसा का पालन नहीं किया जिसका उन्हें दर्शन हुआ था। इस जगत में ऐसा पुरुष कौन है जो अपने सिद्धांतों पर पूरा अमल करता हो? मेरा मानना है कि देह-धारी के लिए संपूर्ण अहिंसा का पालन अशक्य है। जब तक शरीर है तब तक कुछ-न-कुछ तो अहं भाव रहता ही है। जब तक अहं भाव है, शरीर को भी तभी तक धारण करना है ही। इसलिए शरीर के साथ हिंसा भी रही हुई है। टॉल्स्टॉय ने स्वयं कहा है, “जो अपने को आदर्श तक पहुँचा हुआ समझता है, उसे नष्टप्राय ही समझना चाहिए। बस, यहीं से उसकी अधोगति शुरू होती है। ज्यों-ज्यों हम आदर्श के समीप पहुँचते हैं, आदर्श दूर भागता जाता है। जैसे-जैसे हम उसकी खोज में अग्रसर होते हैं यह मालूम होता है कि अभी तक एक मंजिल और बाकी है। कोई भी जल्दी से मंजिल तय नहीं कर सकता, ऐसा मानने में हीनता नहीं है, निराशा नहीं है, किंतु नम्रता अवश्य है।” इसी से हमारे ऋषियों ने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहने वाले को शून्यता प्राप्त करना है। यह ईश्वर प्रसाद के बिना नहीं मिल सकती। यह शून्यता जब तक शरीर है, आदर्श ही रहती है। इस बात को टॉल्स्टॉय ने साफ देख लिया, उसे बुद्धि में अंकित किया, उसकी ओर दो डग आगे बढ़े और उसी वक्त उन्हें वह हरी छड़ी मिल गई। उस छड़ी का वह वर्णन नहीं कर सकते, सिर्फ मिली, इतना ही कह सकते हैं। फिर भी अगर कहा होता कि मिली तो उनका जीवन समाप्त हो जाता।

टॉल्स्टॉय के जीवन में जो विरोधाभास दीखता है। वह टॉल्स्टॉय का कलंक या कमजोरी नहीं है, किंतु देखने वालों की त्रुटि है। एमर्सन ने कहा है कि अवरोध तो छोटे-से आदमी का पिशाच है। हमारे जीवन में कभी विरोध आने वाला ही नहीं, अगर हम यह दिखलाना चाहें तो हमें मरा ही समझें। ऐसा करने में अगर कल के कार्य को याद रखकर उसके साथ आज के कार्य का मेल करना पड़े तो कृत्रिम मेल में असत्याचरण हो सकता है। सीमा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो, उसका आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो जाती हो तो हमारे कार्यों में दूसरों को विरोध दिखे भी तो उससे हमें क्या संबंध है। सच तो यह है कि वह हमारा विरोध नहीं है, हमारी उन्नति है। उसी के अनुसार टॉल्स्टॉय के जीवन में जो विरोध दिखता है वह विरोध नहीं है, बल्कि हमारे मन का विरोधाभास है। मनुष्य अपने हृदय में कितने प्रयत्न करता होगा, राम-रावण के युद्ध में कितनी विजयें प्राप्त करता होगा, उनका ज्ञान उसे स्वयं नहीं होता, देखने वालों को तो हो ही नहीं सकता। यदि वह कुछ फिसला तो वह जगत की निगाह में कुछ भी नहीं है, ऐसा प्रतीत होना अच्छा ही है। उसके लिए दुनिया निंदा का पात्र नहीं है। इसी से तो संतों ने कहा है कि जगत जब हमारी निंदा करे तब हमें आनंद मनाना चाहिए और स्तुति करे तब काँप उठना चाहिए। जब दूसरा नहीं करता। उसे तो जहाँ मैल दिखा कि वह उसकी निंदा ही करेगा। परंतु महापुरुष के जीवन को देखने बैठें तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदय में

कितने युद्ध किए होंगे और कितनी जीतें प्राप्त की होंगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है, यही निष्फलता और सफलता के चिह्न हैं।

इतना कहकर मैं यह नहीं समझना चाहता कि तुम अपने दोषों को छिपाओ या पहाड़ से दोषों को तिनके से गिनो। यह तो मैंने दूसरों के विषय में कहा है। दूसरों के हिमालय से बड़े दोषों को राई के समान समझना चाहिए और अपने राई के दोषों को हिमालय के समान बड़ा समझना चाहिए। अपने में अगर जरा-सा भी दोष मालूम हो, जाने-अनजाने असत्य हो गया हो तो हमें ऐसा होना चाहिए कि अब हम जल में डूब मरें। दिल में आग सुलग जानी चाहिए। सर्प या बिच्छू का डंक तो कुछ नहीं है, उनका जहर उतारने वाले बहुत मिल सकते हैं, परंतु असत्य और हिंसा के देश से बनाने वाला कौन है? ईश्वर हमें उससे मुक्ति दे सकता है और हममें अगर पुरुषार्थ हो तभी वह मिल सकती है। इसलिए अपने दोषों के बारे में हम सचेत रहें। वे जितने बड़े देखे जा सकें, उन्हें हम देखें और अगर जगत हमें दोषी ठहराए तो हम ऐसा न मानें कि जगत कितना कंजूस है कि छोटे-से-छोटे को बड़ा बतलाता है। टॉल्स्टॉय को कोई उनका दोष बतलाता तो वह उसे बड़ा भयंकर रूप देते थे। उनका दोष बताने को शायद ही कोई उपस्थित हुआ हो क्योंकि वह बहुत आत्म-निरीक्षण किया करते थे। दूसरों के बताने के पहले ही वह अपने दोष देख लेते थे और उसके लिए जिस प्रायश्चित की कल्पना उन्होंने स्वयं की हो, वह भी वह कर डाले हुए होते थे। यह साधुता की निशानी है। इससे मैं मानता हूँ कि उन्हें वह छड़ी (सिद्धि) मिली थी।

दूसरी एक अद्‌भुत वस्तु का ख़याल टॉल्स्टॉय ने लिखकर और उसे अपने जीवन में ओत-प्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रेड लेबर'। यह उनकी स्वयं की खोज न थी। किसी दूसरे लेखक ने यह वस्तु रूस के सर्व-संग्रह में लिखी थी। इस लेखक को टॉल्स्टॉय ने जगत के सामने ला रखा और उसकी बात को भी प्रकाश में ले आए। जगत में जो असमानता दिखाई पड़ती है, दौलत व कंगालियत नजर आती है, उसका कारण यह है कि हम अपने जीवन का कानून भूल गए हैं। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। गीता के तीसरे अध्याय के आधार पर मैं उसे यज्ञ कहता हूँ। गीता में कहा है कि बिना यज्ञ किए जो खाता है, वह चोर है, पापी है। वही चीज टॉल्स्टॉय ने बतलाई है।

'ब्रेड लेबर' का उलटा-सुलटा भावार्थ करके हमें उसे उड़ा नहीं देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नहीं करता उसे खाने का अधिकार नहीं है। हम भोजन के मूल्य के बराबर मेहनत कर डालें तो जो गरीबी जगत में दिखाई देती है, वह दूर हो जाए। एक आलसी दो भूखों को मारता है क्योंकि उसका काम दूसरे को करना पड़ता है। टॉल्स्टॉय ने कहा कि लोग परोपकार करने के लिए प्रयत्न करते हैं, उसके लिए पैसे खरचते हैं और इलकाब लेते हैं। परंतु ऐसा न करके थोड़ा-सा काम करें अर्थात दूसरों के कंधों पर से नीचे उतर जाएँ तो बस यही काफी है और सच्ची बात है। यह नम्रता का वचन है। करें तो परोपकार, किंतु अपने ऐशो-आराम में से लेशमात्र भी न छोड़ें तो वह वैसा ही हुआ जैसा कि अखा भक्त ने कहा है, 'निहाय की चोरी और सूई का दान'। ऐसे क्या विमान आ सकता है?

बात ऐसी नहीं है कि टॉल्स्टॉय ने जो कहा वह दूसरों ने नहीं कहा हो, परंतु उनकी भाषा में चमत्कार था, क्योंकि जो कहा उसका उन्होंने पालन किया। गद्दी-तकियों पर बैठने वाले मजदूरी में जुट गए, आठ घंटे खेती का या दूसरा मजदूरी का काम उन्होंने किया। इससे यह न समझें कि उन्होंने साहित्य का कुछ काम ही नहीं किया था। जब से उन्होंने शरीर की मेहनत का काम शुरू किया तब से उनका साहित्य अधिक शोभित हुआ। उन्होंने अपनी पुस्तकों में जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है'। यह उन्होंने इस यज्ञकाल की मजदूरी में से बचे वक्त में लिखी थी। मजदूरी से उनका शरीर न घिसा और ऐसा उन्होंने स्वयं मान लिया था कि उनकी बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई और उनके ग्रंथों के अभ्यासी कह सकते हैं कि यह बात सच्ची है।

यदि टॉल्स्टॉय के जीवन का उपयोग करना हो तो उनके जीवन से उल्लिखित तीन बातें जान लेनी चाहिए। युवक-संघ के तथ्यों को यह वचन कहते हुए मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूँ कि तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं : एक स्वेच्छाचार का और दूसरा संयम का। यदि तुम्हें यह प्रतीत होता हो कि टॉल्स्टॉय ने जीना और मरना जाना था तो तुम देख सकते हो कि दुनिया में सबके लिए और विशेषतः युवकों के लिए संयम का मार्ग ही सच्चा मार्ग है। हिंदुस्तान में तो खासतौर पर है ही।... देश में पश्चिम से तरह-तरह की हवाएँ, मेरी दृष्टि में जहरीली हवाएँ आती हैं। टॉल्स्टॉय के जीवन के समान सुंदर हवा भी आती है वही, परंतु वह प्रत्येक स्टीमर में थोड़े ही आती है। प्रत्येक स्टीमर में कहो या प्रतिदिन कहो, कारण कि प्रतिदिन कोई-न-कोई स्टीमर मुंबई या कोलकाता के बंदरगाह में आता ही है। दूसरे परदेसी सामान के समान उसमें परदेसी साहित्य भी आता है। उनके विचार को चकनाचूर करने वाले होते हैं, स्वेच्छाचार की तरफ ले जाने वाले होते हैं। तिलक महाराज कह गए हैं कि हमारे यहाँ 'कांश्यंस' का पयार्यवाची शब्द नहीं है। हम यह नहीं मानते कि प्रत्येक व्यक्ति के 'कांश्यंस' होता है, पश्चिम में यह बात मानते हैं। व्यभिचारी के लिए, लंपट के लिए, कांश्यंस क्या हो सकता है? इसलिए तिलक महाराज ने 'कांश्यंस' की जड़ ही उड़ा दी। हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा है कि अंतर्नाद सुनने के लिए अंतर्कर्ण भी चाहिए, अंतर्चक्षु भी चाहिए

और उसे प्राप्त करने के लिए संयम की आवश्यकता है। इसलिए पातंजल योगदर्शन में योगाभ्यास करने वालों के लिए, आत्मदर्शन की इच्छा रखने वालों के लिए, पहला पाठ यम-नियम पालन करने का बताया है। सिवा संयम के मेरे, तुम्हारे या अन्य किसी के पास कोई मार्ग ही नहीं है। यही टॉल्स्टॉय ने अपने लंबे जीवन में संयमी रहकर बताया। मैं चाहता हूँ, प्रभु प्रार्थना करता हूँ कि यह चीज हम उसी तरह साफ देख सकें जैसे कि आँखों के आगे का दीया स्पष्ट देखते हैं।

निश्चय कर लो कि हम सत्य की आराधना छोड़ने वाले नहीं है सत्य के लिए दुनिया में सच्ची अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा प्रेम का सागर है। उसका नाम जगत में कोई ले ही सका नहीं। उस प्रेमसागर से हम सराबोर हो जाएँ तो हममें ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमें सारी दुनिया को हम विलीन कर सकते हैं। यह बात कठिन अवश्य है, किंतु है साध्य ही। इसी से हमने प्रारंभ में प्रार्थना में सुना कि शंकर हों या विष्णु, ब्रह्म हों या इंद्र, बुद्ध हों या सिद्ध, मेरा सिर तो उसी के आगे झुकेगा जो रागद्वेष रहित हो, जिसने काम को जीता हो, जो अहिंसा प्रेम की प्रतिमा हो। यह अहिंसा लूले-लँगड़े प्राणियों को न मारने में समाप्त नहीं होती। उसमें धर्म हो सकता है, परंतु प्रेम तो उससे भी बहुत आगे बढ़ा हुआ है। उसके दर्शन जिसको नहीं हुए वह लूले-लँगड़े प्राणियों को बचाए तो उससे क्या होना-जाना था। ईश्वर के दरबार में इसकी कीमत बहुत कम कूती जाएगी। तीसरी बात है 'ब्रेड लेबर' यज्ञ। शरीर को कष्ट देकर मेहनत करके ही खाने का हमें अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टि से किया हुआ काम यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवा के हेतु जीना है। लंपट होने को या दुनिया के भागों का उपयोग करने को जीवित रहना नहीं कहते हैं। कोई कसरतबाज नौजवान आठ घंटे कसरत करे तो यह 'ब्रेड लेबर' नहीं है। तुम कसरत करो, शरीर को मजबूत बनाओ तो इसकी मैं अवगणना नहीं करता, परंतु जो यज्ञ टॉल्स्टॉय ने कहा है, गीता के तीसरे अध्याय में जो बताया गया है, वह यही नहीं है। जीवन यज्ञ की खातिर है, सेवा के लिए है। जो ऐसा समझेगा वह भोगों को कम करता जाएगा। इस आदर्श साधन में ही पुरुषार्थ है। भले ही इस वस्तु को किसी ने सर्वनाश में प्राप्त किया हो, भले ही वह दूर-ही-दूर रहे, किंतु फरहाद ने जिस तरह शीरीं के लिए पत्थर फोड़े। हमारी यह शीरीं अहिंसा है। उसमें हमारा छोटा-सा स्वराज तो शामिल है ही, बल्कि उसमें तो सभी कुछ समाया है। (हि.न.20-9-28)

महान टॉल्स्टॉय ने लगभग 83 वर्ष की अवस्था में देहत्याग किया है। 'वे मर गए हैं'—उसकी अपेक्षा यह कहना कि उन्होंने 'देहत्याग किया है' अधिक उचित जान पड़ता है। टॉल्स्टॉय का नाम तो अमर ही है। केवल उनका शरीर, जो मिट्टी से पैदा हुआ था मिट्टी में जा मिला है।

टॉल्स्टॉय का नाम सारा संसार जानता है, परंतु सैनिक की तरह नहीं, यद्यपि वे एक समय कुशल सैनिक के रूप में मशहूर थे। एक बड़े लेखक की भाँति भी नहीं, यद्यपि लेखक के रूप में उनकी बड़ी ख्याति है। एक ईसाई की तरह भी नहीं, यद्यपि उनके पास अपार संपत्ति थी। उन्हें तो संसार एक साधु-पुरुष के रूप में जानता था। भारत में हम ऐसे व्यक्ति को महर्षि अथवा फकीर कहेंगे। उन्होंने अपनी दौलत छोड़ी ठाट-बाट छोड़ा और गरीब किसान की जिंदगी अपनाई। टॉल्स्टॉय का एक गुण यह था कि उन्होंने जो कुछ सिखाया, उस पर स्वयं भी अमल करने का प्रयत्न किया है। इसलिए हजारों लोगों ने उनके वचनों उनके लेखों पर निष्ठा रखी।

हमारा विश्वास है कि ज्यों-ज्यों समय बीतेगा त्यों-त्यों टॉल्स्टॉय के उपदेशों का अधिकाधिक मान होगा। उनकी शिक्षा धर्म पर आधारित थी। वे स्वयं ईसाई थे और इसलिए हमेशा यही मानते थे कि ईसाई धर्म सर्वश्रेष्ठ है, परंतु अन्य धर्मों का खंडन नहीं किया। उन्होंने तो यह कहा है कि सभी धर्मों में सत्य तो है ही। साथ ही, यह भी कहा है कि स्वार्थी पादरियों, स्वार्थी ब्राह्मणों और स्वार्थी मुल्लाओं ने ईसाई और इसी तरह दूसरे धर्मों को गलत रूप दे दिया है और मनुष्यों को भ्रमित किया है।

टॉल्स्टॉय का विशेष रूप से यह कहना था कि शरीर-बल की अपेक्षा आत्मबल अधिक शक्तिशाली होता है, यही सब धर्मों का सार है। संसार से दुष्टता मिटाने का मार्ग यही है कि बुरे के साथ हम बुराई के बदले भलाई करें। दुष्टता अधर्म है। अधर्म का इलाज अधर्म नहीं हो सकता, धर्म ही हो सकता है। धर्म में तो दया का ही स्थान है। धर्मी व्यक्ति अपने शत्रु का भी बुरा नहीं चाहता। इसलिए सदा धर्म-पालन करते रहना इष्ट हो तो नेकी ही करनी चाहिए।

इस महान पुरुष ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में 'इंडियन ओपीनियन' के अंक स्वीकार करते हुए मेरे नाम एक पत्र लिखा था, उसमें यही विचार व्यक्त किए गए थे। वह पढ़ने योग्य हैं। उसमें उन्होंने सत्याग्रह के बारे में जो कुछ लिखा है, उस पर सबको मनन करना चाहिए। वह कहते हैं कि ट्रांसवाल का संघर्ष संसारभर में अपनी छाप छोड़ जाएगा। इस संघर्ष से सबको बहुत कुछ सीखना है। पत्र-लेखक सत्याग्रहियों का उत्साह बढ़ाते हुए कहते हैं कि अगर शासकों से न्याय प्राप्त न हुआ तो ईश्वर से अवश्य प्राप्त होगा। शासकों को अपनी शक्ति का मोह होता है, उन्हें सत्याग्रह पसंद आ ही नहीं सकता, किंतु सत्याग्रहियों को धैर्यपूर्वक संघर्ष चलाते रहना चाहिए। टॉल्स्टॉय रूस की मिसाल देते हुए कहते हैं कि वहाँ के सैनिक अपना फौजी पेशा त्यागते जा रहे हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि यद्यपि इस आंदोलन का परिणाम फिलहाल दिखाई नहीं पड़ता, तथापि आगे चलकर यह महान रूप धारण कर लेगा और रूस की बेड़ियाँ कटेंगी।

हमारे आंदोलन को टॉल्स्टॉय जैसे महान पुरुष का आशीर्वाद, यह हमारे लिए कुछ कम प्रोत्साहन की बात नहीं।

इ.ओ. (26-11-1910)

('अंतिम जन पत्रिका' के मार्च 2019 अंक से साभार)

इतिहास बनती पारंपरिक लेखन सामग्री

कबीर कहते हैं, “मसि, कागद छूयो नहिं, कलम गही नहिं हाथ” लेकिन किसी-न-किसी ने जरूर कलम, कागज और स्याही को छुआ होगा अन्यथा ‘कबीर ग्रंथावली’ या ‘बीजक’ जैसी रचनाएँ आज हमारे सामने नहीं होतीं। कबीर को इस बात का जरूर अफ़सोस रहा होगा कि उन्हें अपने जीवन में मसि, कागद और कलम का प्रयोग करने का अवसर नहीं मिला अन्यथा वो ऐसा क्यों लिखते? मसि, कागद और कलम का मनुष्य की तरक्की में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मसि, कागद और कलम में मसि क्या है, मसि कहते हैं ‘स्याही’ को। अंग्रेजी में इसे ‘इंक’ कहते हैं। वैसे तो स्याही शब्द ‘स्याह’ से बना है जिसका अर्थ होता है ‘काला’। पहले किसी भी काली चीज़ को घोल लेते थे और उससे लिखने का काम लेते थे। वही स्याही कहलाई। उसके बाद दूसरे रंग जैसे नीला, लाल, हरा आदि भी लिखने के काम में लिए जाने लगे और उन्हें उनके रंगों के अनुरूप नाम न देकर नीली स्याही, लाल स्याही, हरी स्याही आदि नाम दे दिए गए। स्याही शब्द का अर्थ विस्तार हो गया।

स्याही से जिस आधार पर लिखते हैं उनमें कागज प्रमुख है। कागज का आविष्कार बाद में हुआ, लेकिन कागज के आविष्कार से पहले भी लिखा जाता था। लिखने का प्रारंभ सबसे पहले पेड़ों के पत्तों पर लिखने से हुआ। हमारे यहाँ प्रायः भोजपत्र पर लिखे ग्रंथों का उल्लेख होता है। भोजपत्र वास्तव में पत्ते नहीं, अपितु भुर्ज वृक्ष के तने की छाल होती है। अंग्रेजी में इसे ‘बर्च’ के नाम से जाना जाता है व इसका वैज्ञानिक नाम ‘बेटुला यूटिलिस’ है। यह अत्यंत पतली और चिकनी सतह वाली होती है जिससे इस पर सरलतापूर्वक लिखा जा सकता है। पुराने समय में इसे सहेजकर रखना भी अपेक्षाकृत सरल होता था। इसकी कई प्रजातियाँ मिलती हैं जिनकी छाल पर लिखने का कार्य किया जाता था। इन्हीं भोजपत्रों की बदौलत हमारा पुराना वैदिक काल तक का साहित्य हम तक पहुँच पाया है। कभी जो भोजपत्र हमारे साहित्य को एक काल से दूसरे काल तक सुरक्षित पहुँचाने का माध्यम था, आज वही भोजपत्र तंत्र-मंत्र के लिए ज़्यादा प्रयोग में लाया जा रहा है। आज हमारे देश में इस वृक्ष की कई प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं।

बचपन का वो ज़माना याद आता है जब लकड़ी, सरवे या नरसल की कलम को काली स्याही की दवात में डुबो-डुबो कर लकड़ी से बनी पट्टी या तख़्ती पर लिखा करते थे। लकड़ी की नई पट्टी या तख़्ती

सीताराम गुप्ता

जन्म : छह जुलाई, 1954, दिल्ली।

शिक्षा : हिंदी भाषा के अतिरिक्त रूसी, उर्दू, फारसी व अरबी भाषाओं का भी अध्ययन। टेलीविज़न प्रजेंटेशन में डिप्लोमा।

प्रकाशन/कृति : कविता-संग्रह ‘मेटामॉफोसिस’ तथा ‘मन की शक्ति’ द्वारा उपचार विषयक पुस्तक ‘मन द्वारा उपचार’ फुल सर्कल द्वारा प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य तथा भाषा विषयक लेख, व्यंग्य, कथा-साहित्य आदि प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल : 09555622323

ई-मेल : srgupta54@yahoo.co.in

खरीदते थे तो सबसे पहले उस पर सरसों के तेल में हल्दी मिलाकर लगाते थे। जब पट्टी या तख़्ती उस तेल को पूरी तरह से सोख लेती थी तो उस पर मुल्तानी मिट्टी पोतते थे। सूखने पर उस पर पेंसिल से लाइनें या सत्तरें डाली जाती थीं। उसके बाद सरकंडे, सरवे या नरसल की कलम व काली स्याही से उस पर लिखने का अभ्यास किया जाता था। कलम बनाने के लिए खास किस्म के चाकू इस्तेमाल में लाए जाते थे जिन्हें 'रेती का चाकू' कहते थे। चरागदीन मार्का रेती के चाकू सबसे अच्छे माने जाते थे। पूरी कक्षा में मुश्किल से एक-दो विद्यार्थियों के पास ही चाकू मिलते थे। ज़्यादातर बच्चे उनसे माँगकर ही अपना काम चलाते थे।

काली स्याही को आमतौर पर टिन की छोटी-सी दवात में रखा जाता था। काली स्याही बनाने के लिए काली स्याही की पुड़ियाँ आती थीं जिनमें पपड़ीनुमा या फफोलों जैसी सूखी स्याही होती थी। उसे पानी में घोलकर लिखने के योग्य बनाते थे। कई बार पानी ज़्यादा पड़

जाने से स्याही पतली हो जाती थी जिसे कच्ची बोलते थे। स्याही यदि पतली या कच्ची हो जाती थी तो उसे पक्की या गाढ़ी बनाने के लिए एक विचित्र प्रयोग करते थे। स्याही में कलम डालकर उसे दही की तरह बिलोते थे और कुछ देर यह क्रिया करने के उपरांत स्याही सचमुच पक्की हो जाती थी। संभवतः लकड़ी की बनी कलम कुछ पानी सोख लेती होगी और स्याही अपेक्षाकृत गाढ़ी हो जाती होगी। तख़्ती पर कभी भी नीली या दूसरे रंगों की स्याही से नहीं लिखते थे क्योंकि ये रंग तख़्ती पोतने के बाद भी तख़्ती से छूटते नहीं थे और ऐसे में तख़्ती का बार-बार इस्तेमाल संभव नहीं हो सकता था।

एक बार लिखने के बाद तख़्ती पर लगी स्याही व मुल्तानी मिट्टी को भिगोकर व धोकर उसे साफ कर लिया जाता था और पुनः उस पर मुल्तानी मिट्टी का ताज़ा लेप लगाकर और सुखाकर उसे लिखने के काम में लाया जाता था। हर बार तख़्ती को धोना, पोतना व सुखाना मज़ेदार भी कम नहीं होता था। तख़्ती को सुखाने के लिए हाथ में लेकर गोल-गोल घुमाते थे। लड़ाई-झगड़ा होने पर प्रतिद्वंद्वी का सिर फोड़ने का काम भी तख़्ती से ही लिया जाता था। बहुत सारे गाने भी थे जो तख़्ती सुखाते वक़्त गाए जाते थे जैसे—

तख़्ती पे तख़्ती तख़्ती पे दाना,
कल की छुट्टी परसों आना।

आज बच्चों के बस्तों का बोझ बहुत भारी हो गया है। उस समय बच्चों के बस्तों में कम किताबें, नाममात्र की कॉपियाँ, एक अदद तख़्ती व एक स्लेट और कुछ कलम व पेंसिलें ही होती थीं। इसके बावजूद इस बात का ध्यान रखा जाता था कि बच्चों पर ज़्यादा बोझ न पड़े। इसीलिए तख़्तियाँ प्रायः ऐसी लकड़ी की बनाई जाती थीं जो वज़न में अपेक्षाकृत हल्की हों।

वैसे तो तख़्तियाँ हर प्रकार की लकड़ी से बनाई जाती थीं, लेकिन इसके लिए छातिन की लकड़ी सबसे उपयुक्त मानी जाती थी। छातिन को अंग्रेजी में 'डीटा बार्क' व संस्कृत में 'सप्तपर्ण' के नाम से जाना जाता है। इस पेड़ का वैज्ञानिक नाम 'एल्स्टोनिया स्कोलेरिस' भी बड़ा रोचक है। इस पेड़ के नामकरण का प्रथम भाग एल्स्टोनिया प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री प्रो. एल्स्टन के सम्मान में किया गया है और दूसरे भाग का नाम स्कोलेरिस इसलिए दिया गया क्योंकि इस पेड़ की लकड़ी से विद्यार्थियों अर्थात स्कॉलर्स के लिखने के लिए तख़्ती बनाई जाती थी। दिल्ली में सड़कों के किनारे व दूसरे स्थानों पर ये छातिन के पेड़ काफी संख्या में देखे जा सकते हैं। इन पेड़ों के बीज हवा में उड़कर आसानी से इधर-उधर फैल जाते हैं और उग आते हैं।

एक तख़्ती का हजारों बार इस्तेमाल करना सामान्य बात थी। यही स्थिति स्लेट की भी होती थी। एक तख़्ती व एक स्लेट से घर के कई बच्चे पढ़-लिख जाते थे। स्लेट पत्थर की बनी होती थी जो चारों

ओर से लकड़ी के फ्रेम में जकड़ी होती थी। फ्रेम में प्रायः चीड़ की लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। वास्तव में स्लेट ग्रे या स्लेटी रंग के एक पत्थर का नाम होता है जिसे आसानी से पतली-पतली परतों में काटकर लिखने योग्य बनाया जा सकता है। स्लेट पत्थर की बनी होने के कारण ही उसे 'स्लेट' कहा जाता था। बाद में स्लेट के फ्रेम लकड़ी के साथ-साथ लोहे की पत्तियों अथवा टिन से भी बनाए जाने लगे। उसके बाद स्लेट पत्थर का स्थान भी टिन ने ले लिया, पर नाम वही रहा। हाँ, उसके साथ टिन विशेषण जुड़ गया और उसे टिन की स्लेट कहा जाने लगा।

मुझे याद है कि जिस तख़्ती पर मैंने लिखना सीखा और पाँचवीं कक्षा तक जिसका लगातार प्रयोग किया, बाद में उसी तख़्ती पर मेरे अनुज ने भी लिखना सीखा था। आज बड़े भाई-बहनों की इस्तेमाल की गई चीज़ों को दोबारा इस्तेमाल करना संभव नहीं। पहले कलम,

आज हम इतनी अधिक मात्रा में स्टेशनरी का प्रयोग करते हैं कि हमारी पढ़ाई-लिखाई के कारण भी पर्यावरण प्रदूषण में कम वृद्धि नहीं हो रही है। पहले जब तक कलम या पेंसिल एक अंगुल की न हो जाए तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ते थे, लेकिन आज हम 'यूज़ एंड थ्रो कल्चर' के कारण चीज़ों का इस्तेमाल कम, संसाधनों का दुरुपयोग अधिक कर रहे हैं।

तख़्ती, स्लेट, मुल्तानी मिट्‌टी, खड़िया, स्याही आदि जो लेखन सामग्री इस्तेमाल की जाती थी, वह पूरी तरह से ईकोफ्रेंडली या पर्यावरण के अनुकूल होती थी। स्केल भी प्रायः लकड़ी के बने हुए ही होते थे। ये एक फुट लंबे होते थे अतः इन्हें 'फुटा' कहा जाने लगा। कॉपी में भी कलम से ही लिखते थे, लेकिन स्याही नीली व लाल होती थी।

स्याही को सूखने में कुछ समय लगता था इसलिए स्याही को जल्दी सुखाने के लिए स्याहीचूस अर्थात ब्लॉटिंग पेपर का इस्तेमाल करते थे। यदि कॉपी में लिखने के बाद सही तरह से सुखाया नहीं जाता था तो कॉपी के पन्ने आपस में चिपक जाते थे जिन्हें दोबारा खोलकर पढ़ना असंभव होता था। आज हम इतनी अधिक मात्रा में स्टेशनरी का प्रयोग करते हैं कि हमारी पढ़ाई-लिखाई के कारण भी पर्यावरण प्रदूषण में कम वृद्धि नहीं हो रही है। पहले जब तक कलम या पेंसिल एक अंगुल की न हो जाए तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ते थे, लेकिन आज हम 'यूज़ एंड थ्रो कल्चर' के कारण चीज़ों का इस्तेमाल कम, संसाधनों का दुरुपयोग अधिक कर रहे हैं। स्टेशनरी के रूप में आज सैकड़ों नहीं हजारों चीज़ों का इस्तेमाल कर रहे हैं, जिनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। ये स्थिति पर्यावरण के लिए बहुत घातक है।

मेरे बाबाजी (दादाजी) भी हिसाब-किताब लिखने के लिए काली स्याही व कलम का ही इस्तेमाल करते थे। मेरे बाबाजी के पास पीतल की एक बड़ी-सी दवात थी। पाँच-छह इंच ऊँची दवात और उस पर 10-12 इंच ऊँचा ढक्कन। दवात में स्याही भरी होती थी। कलम की नोक दवात की पीतल से बनी कठोर तली से टकराकर न टूटे इसलिए दवात में स्याही के साथ मलमल या अन्य कोई मुलायम-सा कपड़ा भी डालते थे। कलम रखने के लिए पीतल का ही बड़ा-सा कलमदान भी था। वैसे कई बार कलम उपलब्ध न होने पर बाबाजी झाड़ू के तीले से ही कलम का काम ले लेते थे। हम बाबाजी की दवात की तुलना कुतुबमीनार से करते थे। अब लगता है कुतुबमीनार नहीं, एफ़िल टॉवर जैसी थी वह दवात। आज ये सब चीज़ें संग्रहालयों की शोभा बढ़ाने के साथ-साथ लेखन सामग्री अर्थात कलम, कागज और स्याही के इतिहास पर रोशनी डालने का कार्य करती हैं।

पुणे स्थित राजा दिनकर केलकर संग्रहालय एक विशाल संग्रहालय है। संग्रहालय की विभिन्न दीर्घाओं में न केवल कला एवं शिल्प के अद्वितीय नमूने प्रदर्शित हैं, अपितु दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली अनेकानेक वस्तुएँ भी यहाँ देखी जा सकती हैं। संग्रहालय के एक भाग में चौपड़, शतरंज तथा इनके पासे और गोटियाँ, गंजीफ़ा आदि वस्तुएँ पर्याप्त संख्या में रखी हैं तो दूसरी ओर विविध प्रकार की लेखन सामग्री जैसे कलमदान, पेन, चाकू, कैंची, दवात, डिबियाँ, चाकू के दस्ते आदि वस्तुएँ प्रदर्शित हैं। लेखन सामग्री अर्थात कलम, कागज और स्याही का इतिहास भी कम रोचक नहीं। संग्रहालय में इस प्रकार की पर्याप्त सामग्री प्रदर्शित की गई है।

संग्रहालय में असंख्य प्रकार की दवातें मौजूद हैं। पीतल, ताँबे, काँच और अन्य सामग्री से निर्मित छोटी-बड़ी अनेक दवातें। गजाकृति मसिपात्र, उष्ट्राकृति मसिपात्र, सिंहाकृति मसिपात्र तथा अन्य अनेक

प्रकार की स्याही की दवातें। दवातें ही नहीं कलमदान भी विभिन्न प्रकार के हैं। एक कलमदान में स्याही की दवात के साथ-साथ कलम और रेतदान भी रखे हैं। रेतदान में सूखा बारीक रेत रखते थे जो स्याही को सुखाने के काम आता था। आज न तो किसी के पास इतना समय ही है कि पारंपरिक लेखन सामग्री का प्रयोग कर सके और न यह बहुत अधिक व्यावहारिक ही होगा, लेकिन पर्यावरण की सेहत के लिए इनके इस्तेमाल पर विचार किया जा सकता है। विचार करना भी चाहिए क्योंकि मात्र एक स्लेट अथवा एक तख़्ती पर सैकड़ों कॉपियों जितना काम करके कीमती पेड़ों और अन्य वन-संपदा को बचाना संभव है।

स्वतंत्रता से गणतंत्र की यात्रा

–विजय कुमार

विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र, भारत की सत्ता को चलाने के लिए सरकार के पास एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। सरकारें तभी काम कर पाती हैं जब उनके सामने एक लिखित व आदर्श संविधान हो। हम जिस देश के अंग हैं उस देश को सलीके से चलाने के लिए सरकार संविधान के माध्यम से ही सक्षम है। अब प्रश्न उठता है कि संविधान क्या है? और इसके कार्य क्या हैं? किसी देश का संविधान उस देश की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का वह बुनियादी ढाँचा निर्धारित करता है जिसके अंतर्गत उस देश का सफल संचालन संभावित होता है।

संविधान का कार्य बुनियादी नियमों का ऐसा समूह उपलब्ध कराना है जिससे समाज के सदस्यों में न्यूनतम समन्वय एवं विश्वास बना रहे। समाज में निर्णय लेने की शक्ति किसके पास हो, यह भी स्पष्ट करना है। साथ ही, सरकार द्वारा अपने नागरिकों पर लागू किए जाने वाले कानूनों पर कुछ सीमाएँ लगाना भी इसका अहम कार्य है।

हमारा वर्तमान संविधान भारत के लोगों द्वारा बनाया गया और स्वयं को समर्पित किया गया, जिसे संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर, 1949 को अंगीकार किया गया और 26 जनवरी, 1950 को पूर्णरूपेण लागू किया गया। उस समय संविधान में 22 भाग, 395 अनुच्छेद और आठ अनुसूचियाँ थीं।

ध्यातव्य है कि 31 दिसंबर, 1929 को कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में प्रस्ताव पारित कर भारत के लिए पूर्ण स्वराज की माँग की गई थी। नेहरू ने कहा था, “हमारा लक्ष्य सिर्फ स्वाधीनता प्राप्त करना है। हमारे लिए स्वाधीनता है, पूर्ण स्वतंत्रता।” इसी दिन, रावी (भारत-पाकिस्तान) नदी के तट पर भारतीय स्वाधीनता का तिरंगा झंडा फहराया गया था। और यह निर्णय लिया गया कि 26 जनवरी, 1930 तक अंग्रेज सरकार हमें पूर्ण स्वराज का दर्जा देती है तो ठीक है, नहीं तो 26 जनवरी, 1930 से हम अपने आपको आजाद घोषित कर लेंगे, लेकिन उक्त दिनांक तक अंग्रेज सरकार की ओर से कोई जवाब न मिलने के कारण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बैठक में यह फैसला लिया गया कि हर साल 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मनाएँगे और उसी दिन से स्वतंत्रता का संघर्ष और तेज कर दिया गया। इसे 26 जनवरी, 1947 तक स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाते रहे और 15 अगस्त, 1947 को आजादी मिलने के बाद ‘15 अगस्त’ को ‘स्वतंत्रता दिवस’ के रूप में मनाया जाने लगा। लेकिन 26 जनवरी का महत्व कम न हो इसलिए संविधान निर्मात्री सभा ने यह फैसला लिया कि 26 जनवरी को संविधान लागू कर ‘गणतंत्र दिवस’ के रूप में मनाया जाए।

यहाँ एक बात रोचक है कि जब अंग्रेज भारत छोड़ कर जाने वाले थे, यानी द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1945) के बाद उन्हें समझ आ गया था कि हम अब लंबे समय तक भारत जैसे देश में राज नहीं कर पाएँगे। इसका एक कारण भारत में चल रही स्वतंत्रता यानी आजादी की क्रांति थी और दूसरा कारण था उस समय दुनिया की बड़ी-बड़ी ताकतें कमजोर पड़ गई थीं। उनमें उतनी क्षमता नहीं बची थी कि वे भारत व पड़ोसी देशों पर अपना प्रभुत्व बनाए रख सकें। अंग्रेजों ने यहाँ से जाने से पहले एक मिशन (कैबिनेट मिशन) भारत भेजा। मिशन ने कहा कि हम भारतीयों को मिलकर एक संविधान सभा का गठन कर लेना चाहिए। उनकी बात को मानते हुए संविधान सभा का गठन किया गया। संविधान सभा के गठन के समय भारत की जनसंख्या लगभग 40 करोड़ थी और उस समय निर्णय लिया गया

कि 10 लाख की आबादी पर एक सीट बनेगी। और उसी आधार पर लगभग 40 करोड़ पर 389 सीटें बनीं। जब अंग्रेज देश छोड़ रहे थे तब हमारे यहाँ दो व्यवस्थाएँ थीं—एक, ब्रिटिश भारत और दूसरी देसी रियासतें। निर्णय यह लिया गया किया कि इन 389 सीटों में 292 वे निर्वाचित सदस्य होंगे जो ब्रिटिश भारत के सदस्य बनेंगे जिसमें 15 महिलाएँ शामिल होंगी और चार सदस्य चीफ कमिश्नरी क्षेत्र से अर्थात अजमेर, बलूचिस्तान, कुर्ग एवं दिल्ली से होंगे। साथ ही, देसी रियासतों से 93 सदस्यों का मनोनयन किया जाएगा।

नौ दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई जिसमें 207 सदस्य शामिल हुए। इसमें नौ महिलाएँ थीं। इस बैठक में देसी रियासतें व मुस्लिम लीग के 73 सदस्य शामिल नहीं हुए। उन सदस्यों में वरिष्ठ सदस्य होने के कारण डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को बिना चुनाव के संविधान सभा का अस्थायी अध्यक्ष बना दिया गया। तत्पश्चात, बिहार में चंपारण सत्याग्रह में महात्मा गांधी का साथ देने वाले 'बिहार गांधी' डॉ. राजेंद्र प्रसाद को 11 दिसंबर, 1946 को अध्यक्ष बनाया गया। इसके ठीक दो दिन बाद पं. जवाहरलाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया, लेकिन इसे 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा द्वारा पारित किया गया जिसे प्रस्तावना के रूप में संविधान में शामिल किया गया।

यहाँ एक घटना और घटी, डॉ. भीमराव आंबेडकर बंबई सीट से चुनाव लड़े थे, लेकिन वे हार गए और फिर वे पूर्वी बंगाल (विभाजन से पूर्व) से चुनाव लड़े और चुनाव जीत गए, लेकिन बँटवारा होने पर यह सीट पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) चली गई। इस पर बी.एन. राव ने डॉ. राजेंद्र प्रसाद से कहा कि संविधान निर्मात्री सभा की आवश्यकता हैं आंबेडकर। इस पर बंबई के तत्कालीन प्रधानमंत्री बी.जी. खेर ने एम.आर. जयकर से इस्तीफा लेकर वह सीट आंबेडकर को दे दी।

इसके बाद संविधान के प्रारूप पर विचार करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को डॉ. भीमराव आंबेडकर की अध्यक्षता में पांडुलेखन समिति, जिसे 'प्रारूप समिति' कहा जाता है, का गठन किया गया जिसमें सदस्यों की कुल संख्या सात थी। इससे पहले तीन जून, 1947 की योजना के अनुसार विभाजन के बाद वे सभी प्रतिनिधि संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे, जो पाकिस्तान के क्षेत्रों से चुनकर आए थे। संविधान सभा के वास्तविक सदस्यों की संख्या घटकर 299 रह गई। इनमें से 26 नवंबर, 1949 को कुल 284 सदस्यों ने अंतिम रूप से संविधान पर हस्ताक्षर किए और संविधान को अंगीकार कर लिया गया। संविधान के कुल 15 अनुच्छेद (अनु. 5, 6, 7, 8, 9, 60, 324, 366, 367, 379, 380, 388, 391, 392 और 393) को 26 नवंबर, 1949 को ही लागू कर दिया गया। संविधान सभा की अंतिम बैठक 24 जनवरी, 1950 को संपन्न हुई। अंततः 26 जनवरी, 1950 को संविधान पूर्णरूपेण लागू हो गया।

-: उद्देशिका :-

"हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को—

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए, दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ईसवी (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

संविधान बनाए जाने के बाद इसे हस्तलिखित करवाने के लिए जब पं. जवाहरलाल नेहरू ने प्रेम बिहारी नारायण रायजादा से पूछा कि संविधान लेखन के लिए आप कितना धन लेंगे तो उन्होंने पैसा लेने से मना कर दिया। लेकिन उन्होंने एक शर्त रखी, वह यह कि उनका नाम संविधान के प्रत्येक पृष्ठ में नीचे जरूर लिखा जाए और अंतिम पृष्ठ पर उनकी और उनके दादाजी का नाम शामिल किया जाए। और इसीलिए मूल संविधान जो अंग्रेजी में लिखा गया था, में उनकी यह शर्त मंजूर की गई। इसके अलावा, संविधान के प्रत्येक पृष्ठ को नंदलाल बोस द्वारा फूल-पत्तियों से सजाया गया। माना यह जाता है कि उन्होंने उन फूल-पत्तियों में भारत की आजादी को उकेरा है।

26 जनवरी : एक महत्वपूर्ण तिथि

- 26 जनवरी, 1930 को पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया।
- 26 जनवरी, 1931 को सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार से बातचीत के लिए महात्मा गांधी रिहा किए गए।
- 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान ने शासकीय दस्तावेजों के रूप में भारत सरकार के 1935 के भारत शासन अधिनियम का स्थान ले लिया। और इसी दिन 'अशोक स्तंभ' को राष्ट्रीय चिह्न घोषित किया गया।
- 26 जनवरी, 1963 को 'भारतीय मोर' को राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया गया।
- 26 जनवरी, 1972 को दिल्ली स्थित इंडिया गेट पर राष्ट्रीय स्मारक 'अमर जवान ज्योति' स्थापित की गई।

-: संविधान के स्रोत :-

भारत के संविधान के स्रोत नानाविध तथा अनेक हैं। ये देशी भी हैं तथा विदेशी भी। संविधान निर्माताओं ने इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि वे नितांत स्वतंत्र रूप से या एकदम नए सिरे से संविधान-लेखन नहीं कर रहे। उन्होंने जान-बूझकर यह निर्णय लिया था कि अतीत की उपेक्षा न करके पहले से स्थापित ढाँचे तथा अनुभव के आधार पर ही संविधान को खड़ा किया जाए। भारत के संविधान का एक समन्वित विकास हुआ। यह विकास कतिपय प्रयासों के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम था। स्वाधीनता के लिए छेड़े गए राष्ट्रवादी संघर्ष के दौरान प्रातिनिधिक एवं उत्तरदायी शासन संस्थानों के लिए विभिन्न माँगें उठाई गईं। अंग्रेज शासकों ने झींक-झींक कर बड़ी कंजूसी से समय-समय पर थोड़े-थोड़े संवैधानिक सुधार किए। प्रारंभिक अवस्था में यह प्रक्रिया अति अविकसित रूप में थी, किंतु राजनीतिक संस्थान-निर्माण, विशेष रूप से आधुनिक विधानमंडलों का सूत्रपात 1920 के दशक के अंतिम वर्षों में हो गया था। वास्तव में, संविधान के कुछ उपबंधों से स्रोत तो भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी तथा अंग्रेजी राज के शैशव काल में ही खोजे जा सकते हैं।

राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के अंतर्गत ग्राम पंचायतों के संगठन का उल्लेख स्पष्ट रूप से महात्मा गांधी तथा प्राचीन भारतीय स्वशासी संस्थानों से प्रेरित होकर किया गया था। 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने उन्हें अब और अधिक सार्थक तथा महत्वपूर्ण बना दिया है।

कतिपय मूल अधिकारों की माँग सबसे पहले 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मुंबई अधिवेशन में की गई थी। भारत के राज्य-संघ विधेयक में, जिसे राष्ट्रीय सम्मेलन ने 1925 में अंतिम रूप दिया था, विधि के समक्ष समानता, अभिव्यक्ति, सभा करने और धर्म पालन की स्वतंत्रता जैसे अधिकारों की एक विशिष्ट घोषणा सम्मिलित थी। 1927 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसमें मूल अधिकारों की माँग को दोहराया गया था। सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा 1928 में नियुक्त मोतीलाल नेहरू कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में घोषणा की थी कि भारत की जनता का सर्वोपरि लक्ष्य न्याय सीमा के अधीन मूल मानव अधिकार प्राप्त करना है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट में जो 19 मूल अधिकार शामिल किए गए थे, उनमें से 10 को भारत के संविधान में बिना किसी खास परिवर्तन के शामिल कर लिया गया। 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में पारित किए गए प्रस्ताव में न केवल मूल अधिकारों का बल्कि मूल कर्तव्यों का भी विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। 1930 के प्रस्ताव में वर्णित अनेक सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों को संविधान के निदेशक तत्वों में समाविष्ट कर लिया गया। मूल संविधान में मूल कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था, किंतु बाद में 1976 में संविधान (42वाँ) संशोधन अधिनियम द्वारा इस विषय पर भी नया अध्याय संविधान में जोड़ दिया गया।

संविधान में संसद के प्रति उत्तरदायी संसदीय शासन प्रणाली, अल्पसंख्यकों के लिए रक्षा-उपायों और संघीय राज्य व्यवस्था की जो व्यवस्था रखी गई, उसके मूल स्रोत भी 1928 की नेहरू कमेटी रिपोर्ट में मिलते हैं। अंततः कहा जा सकता है कि संविधान का लगभग 75 प्रतिशत अंश भारत शासन अधिनियम, 1935 से लिया गया था। उसमें बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल कुछ आवश्यक संशोधन मात्र किए गए थे। राज्य व्यवस्था का बुनियादी ढाँचा तथा संघ एवं राज्यों के संबंधों, आपात स्थिति की घोषणा आदि को विनियमित करने वाले उपबंध अधिकांशतया 1935 के अधिनियम पर आधारित थे।

देशी स्रोतों के अलावा संविधान सभा के सामने विदेशी संविधानों के अनेक नमूने थे। निदेशक तत्वों की संकल्पना आयरलैंड के संविधान से ली गई थी। विधायिका के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों वाली संसदीय प्रणाली अंग्रेजों से आई और राष्ट्रपति में संघ की कार्यपालिका शक्ति तथा संघ के रक्षा बलों का सर्वोच्च समादेश निहित करना और उपराष्ट्रपति को राज्यसभा का पदेन सभापति बनाने के उपबंध अमरीकी संविधान पर आधारित थे। कहा जा सकता है कि अमरीकी संविधान में सम्मिलित अधिकार पत्र भी हमारे मूल अधिकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत था।

कनाडा के संविधान ने, अन्य बातों के साथ-साथ, संघीय ढाँचे और संघ तथा राज्यों के संबंधों एवं संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण से संबंधित उपबंधों को प्रभावित किया। सप्तम अनुसूची में समवर्ती अनुसूची, व्यापार, वाणिज्य तथा समागम, वित्त आयोग और संसदीय विशेषाधिकारों से संबंधित उपबंध, संभवतया ऑस्ट्रेलियाई संविधान के आधार पर तैयार किए गए। आपात स्थिति से संबंधित उपबंध, अन्य बातों के साथ-साथ, जर्मन राज्य संविधान द्वारा प्रभावित हुए थे। न्यायिक आदेशों तथा संसदीय विशेषाधिकारों के विवाद से संबंधित उपबंधों की परिधि तथा उनके विस्तार को समझने के लिए अभी भी ब्रिटिश संविधान का सहारा लेना पड़ता है।

(सुभाष काश्यप द्वारा लिखित एवं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित 'हमारा संविधान' पुस्तक से साभार)

ब्रह्मांड की उत्पत्ति : कब और कैसे?

महान यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने कहा था कि मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु है तथा उसकी सबसे बड़ी इच्छा ब्रह्मांड की व्याख्या करना है। ब्रह्मांड का विकास इस प्रकार से हुआ है कि समय के साथ इसमें ऐसे जीव (मनुष्य) उपजे, जो अपनी उत्पत्ति के रहस्य को जानने में समर्थ थे। ब्रह्मांड की उत्पत्ति कब और कैसे हुई? क्या यह सदैव से अस्तित्व में था या इसका कोई प्रारंभ भी था? इसकी उत्पत्ति से पूर्व क्या था? क्या इसका कोई जन्मदाता भी है? यदि ब्रह्मांड का कोई जन्मदाता है तो पहले ब्रह्मांड का जन्म हुआ या उसके जन्मदाता का? यदि पहले ब्रह्मांड का जन्म हुआ तो उसके जन्म से पहले उसका जन्मदाता कहाँ से आया? इस विराट ब्रह्मांड की मूल संरचना कैसी है—ये कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्न हैं जो आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने सदियों पूर्व थे। ब्रह्मांड की उत्पत्ति से संबंधित इन मूलभूत प्रश्नों में धर्माचार्यों, दार्शनिकों, और वैज्ञानिकों की दिलचस्पी रही है। इन प्रश्नों के उत्तर सीमित अवलोकनों, आलंकारिक उदाहरणों, मिथकों, रूपकों एवं आख्यानों के आधार पर प्रस्तुत करने के प्रयास प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं एवं धर्मों में हुए। अधिकांश धर्मों में ब्रह्मांड के रचयिता के रूप में ईश्वर की परिकल्पना भी की गई।

प्रदीप

जन्म : 19 फरवरी, 1997

शिक्षा : बी.एससी.

संप्रति : स्वतंत्र विज्ञान लेखन। आप एक साइंस ब्लॉगर एवं विज्ञान संचारक हैं। ब्रह्मांड विज्ञान, विज्ञान के इतिहास और विज्ञान की सामाजिक भूमिका पर लोकोपयोगी लेख लिखने में विशेष रुचि है। ज्ञान-विज्ञान से संबंधित आपके लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

संपर्क : 7291906259, 8510080290

ईमेल—pk110043@gmail.com

हिंदू धर्म की मान्यताओं के अनुसार ब्रह्मा ने ब्रह्मांड का निर्माण किया था। ब्रह्मांड की उत्पत्ति की विचारधारा का वर्णन ऋग्वेद के एक सृजन स्रोत से मिलता है, जिसे 'नासदीय सूक्त' कहते हैं। यह सूक्त वैदिक सोच की पराकाष्ठा को दर्शाता है। इसमें वैदिक ऋषि कह रहे हैं कि 'प्रलयकाल में पंच-महाभूत सृष्टि का अस्तित्व नहीं था और न ही असत् का अस्तित्व था। उस समय भूलोक, अंतरिक्ष तथा अंतरिक्ष से परे अन्य लोक नहीं थे। सबको आच्छादित करने वाले (ब्रह्मांड) भी नहीं थे। किसका स्थान कहाँ था? अगाध और गंभीर जल का भी अस्तित्व कहाँ था?'

सूक्त के अंत में संदेहवादी ऋषि कहता है कि 'यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, किसलिए हुई, वस्तुतः कौन जानता है? देवता भी बाद में पैदा हुए, फिर जिससे यह सृष्टि उत्पन्न हुई, उसे कौन जानता है? किसने विश्व को बनाया और कहाँ रहता है, इसे कौन जानता है? सबका अध्यक्ष परमाकाश में है। वह शायद इसे जानता है अथवा वह भी नहीं जानता।'

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त से यह प्रतीत होता है कि एक नियत समय पर ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई थी। मगर हिंदू धर्म में ब्रह्मांड की उत्पत्ति की विचारधाराएँ विरोधाभासी हैं क्योंकि वेदों, पुराणों में जो आख्यान मिलते हैं, उनमें ब्रह्मांड की उत्पत्ति से पहले के भी आख्यान हैं, इसके खत्म होने के बाद के भी। इसलिए हिंदू धर्म में मानते हैं कि ब्रह्मांड अनादि-अनंत है, इसकी न कोई शुरुआत है और न ही अंत। इसमें सृष्टि सृजन से पहले की भी कहानी होगी और अंत होने के बाद भी, इसलिए कोई एक समय नहीं है—सृष्टि सृजन का!

दूसरी तरफ यहूदी, इस्लाम, ईसाई एवं अन्य कई धर्मों के लोगों का मानना है कि ब्रह्मांड की आवश्यक रूप से एक शुरुआत होनी चाहिए। इनका मानना है कि दुनिया एक दिन शुरू हुई थी और एक दिन खत्म हो जाएगी; इसे बाइबिल में 'एपोकलिप्स' कहा गया है। वहीं अरस्तु एवं अन्य यूनानी दार्शनिकों की धारणा थी कि यह संसार सदैव से अस्तित्व में था तथा सदैव ही अस्तित्व में रहेगा।

खगोलशास्त्र की शुरुआती अवधारणाएँ

दो प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिकों, प्लेटो और अरस्तु ने ब्रह्मांड की प्रकृति से संबंधित ऐसे विचार रखे जो 2000 से भी अधिक वर्षों तक कायम रहे। अरस्तु ने यह सिद्धांत दिया था कि पृथ्वी विश्व (ब्रह्मांड) के केंद्र में स्थित है तथा सूर्य, चंद्रमा, ग्रह और तारे वृत्ताकार

कक्षाओं में पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। अरस्तु के इसी विचार को आधार बनाकर दूसरी शताब्दी में टॉलेमी द्वारा ब्रह्मांड का भूकेंद्री मॉडल प्रस्तुत किया गया। हालाँकि प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक आर्यभट्ट ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और खगोल स्थिर है। उनकी यह मान्यता पौराणिक धारणा के विपरीत थी। इसलिए बाद के खगोलशास्त्रियों ने उनकी इस सही मान्यता को स्वीकार नहीं किया। वैसे दिलचस्प बात यह है कि जब दुराग्रही वेदांतियों द्वारा आर्यभट्ट की इस मान्यता का विरोध किया जा रहा था, तब यूरोप में निकोलस कोपरनिकस सूर्यकेंद्री मॉडल प्रस्तुत कर रहे थे। कोपरनिकस द्वारा एक आसान मॉडल प्रस्तुत किया गया जिसमें यह बताया गया था कि पृथ्वी व अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। वैसे आर्यभट्ट ने यह जरूर बताया था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, परंतु वे यह नहीं बता पाए थे कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

जिस समय कोपरनिकस ने सूर्यकेंद्री मॉडल प्रस्तुत किया था, उस समय पूरे विश्व में टॉलेमी के मॉडल का ही बोलबाला था। चूँकि टॉलेमी और अरस्तु के मॉडल को धार्मिक रूप से भी अपना लिया गया था, इसलिए चर्च ने कोपरनिकस के सिद्धांत को प्रचारित तथा प्रसारित करने पर रोक लगा दी। बाद में किसी तरह एक रोमन प्रचारक ज्योदार्न ब्रूनो को कोपरनिकस के सिद्धांत के बारे में पता चला। उसने कोपरनिकस के मॉडल का अध्ययन किया तथा समर्थन भी। ब्रूनो द्वारा कोपरनिकस के सिद्धांत का समर्थन रोमन धर्म न्यायाधिकरण को धर्म विरुद्ध नज़र आया, इसलिए उन्होंने ब्रूनो को रोम में जिंदा जला दिया।

कोपरनिकस और ब्रूनों के बाद दुनिया के अलग-अलग कोनों में खगोलिकी के क्षेत्र में अनेक खोजें हुईं। जर्मनी के जोहांस केप्लर ने ग्रहों की गतियों का सही स्पष्टीकरण अपने तीन नियमों के आधार पर प्रस्तुत किया। इटली के वैज्ञानिक गैलीलियो ने दूरबीन का उपयोग खगोल विज्ञान के क्षेत्र में किया तथा कई महत्वपूर्ण खोजें की। इंग्लैंड के वैज्ञानिक आइजक न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत तथा गति के तीन नियमों की खोज की।

फैलता हुआ ब्रह्मांड

20वीं सदी के प्रारंभ में कोई भी वैज्ञानिक नहीं जानता था कि तारों से परे ब्रह्मांड का विस्तार कहाँ तक है। वर्ष 1920 में खगोलविदों द्वारा एक अंतरराष्ट्रीय विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें ब्रह्मांड के विस्तार एवं आकार पर चर्चा होनी थी। हार्लो शेप्ली तथा बहुसंख्य खगोलविद इस मत के पक्ष में थे कि संपूर्ण ब्रह्मांड का विस्तार हमारी आकाशगंगा तक ही सीमित है। दूसरी तरफ हेबर क्यूर्टिस तथा कुछ थोड़े से लोगों का मानना था कि हमारी आकाशगंगा की ही तरह ब्रह्मांड में दूसरी भी आकाशगंगाएँ हैं, जो हमारी आकाशगंगा से अलग अस्तित्व रखती हैं। जैसा कि बड़ी-बड़ी विचारगोष्ठियों में होता है, इस बैठक में भी बहुमत का ही पलड़ा भारी रहा।

परंतु वर्ष 1924 में एडविन हब्बल तथा उनके सहयोगियों ने माउंट विल्सन वेधशाला की दूरबीन से यह सिद्ध कर दिया कि इस विराट ब्रह्मांड में हमारी आकाशगंगा की तरह लाखों अन्य आकाशगंगाएँ भी हैं। अतः हब्बल के प्रेक्षणों ने क्यूर्टिस के दृष्टिकोण को सही सिद्ध कर दिया। मगर, हब्बल के निरीक्षण के अन्य निष्कर्ष क्यूर्टिस की कल्पना से भी परे के थे। दरअसल वर्ष 1929 में हब्बल ने यह भी खोज की कि दूर की आकाशगंगाओं से प्राप्त होने वाले प्रकाश की तरंग-लंबाई में एक नियमित वृद्धि है। डॉप्लर प्रभाव के अनुसार जब एक प्रकाश स्रोत हमसे दूर जाता है, तो उससे प्राप्त होने वाले प्रकाश की तरंग-लंबाई में ऐसी ही वृद्धि दिखाई देती है। चूँकि एक सामान्य वर्णक्रम में अधिकतम तरंग-लंबाई लाल रंग और न्यूनतम तरंग-लंबाई नीले-बैंगनी रंग से प्रदर्शित होता है, इसलिए हब्बल द्वारा प्राप्त वर्णक्रम को 'लाल विचलन' कहते हैं। अतः हब्बल ने अपने इस प्रेक्षण से यह निष्कर्ष निकाला कि दूरस्थ आकाशगंगाएँ हमसे दूर भाग रही हैं। हब्बल ने यह भी सिद्ध किया कि आकाशगंगाएँ जितनी अधिक दूर हैं, उनके दूर जाने का वेग भी उतना ही अधिक है। हब्बल ने इसी आधार पर कहा कि संपूर्ण ब्रह्मांड प्रसारमान है, फैल रहा है।

जैसा कि हम जानते हैं कि आइंस्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धांत का स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष था कि ब्रह्मांड सिकुड़ेगा या फैलेगा, मगर स्थिर नहीं रहेगा। वर्ष 1927 में जब जॉर्ज लेमाइत्रे ने सामान्य सापेक्षता के इन निष्कर्षों को आइंस्टाइन को बताया तो उनकी प्रतिक्रिया थी : 'लेमाइत्रे, तुम्हारी गणित तो ठीक है परंतु भौतिकी बहुत बुरी।' आइंस्टाइन स्थिर ब्रह्मांड के कट्टर पक्षधर थे। परंतु हब्बल की खोज ने सदियों पुरानी उस मान्यता को भी नकार दिया जिसके अनुसार ब्रह्मांड शाश्वत एवं स्थिर है। हब्बल की खोज के बाद आइंस्टाइन ने कहा कि ब्रह्मांड को स्थिर बनाने के लिए अपने समीकरणों में ब्रह्मांडीय नियतांक को जोड़ना उनके जीवन की सबसे बड़ी भूल थी। इसलिए इस प्रश्न 'रात अँधेरी क्यों?' का उत्तर है :

ब्रह्मांड फ़ैल रहा है। आइए, अब ब्रह्मांड की उत्पत्ति से संबंधित आधुनिक सिद्धांतों पर चर्चा करते हैं।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति का बिग बैंग सिद्धांत

जैसा कि हम जानते हैं कि हब्बल ने यह खोज की थी कि ब्रह्मांड का विस्तार (फैलाव) हो रहा है। उस समय अन्य वैज्ञानिकों के साथ-साथ हब्बल को भी अपनी इस असाधारण खोज के मायने स्पष्ट नहीं थे। इस मुद्दे पर विचारस्वरूप जॉर्ज लेमाइत्रे और जॉर्ज गैमो ने गंभीर प्रयास किए। इन दोनों वैज्ञानिकों के अनुसार यदि आकाशगंगाएँ बहुत तेज़ी से हमसे दूर भाग रही हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि अतीत में किसी समय जरूर ये आकाशगंगाएँ एक साथ रही होंगी।

वस्तुतः ऐसा लगा कि 10 से 15 अरब वर्ष पहले ब्रह्मांड का समस्त द्रव्य एक ही जगह पर एकत्रित रहा होगा। उस समय ब्रह्मांड का घनत्व असीमित था तथा संपूर्ण ब्रह्मांड एक अति-सूक्ष्म बिंदु में समाहित था। इस स्थिति को परिभाषित करने में विज्ञान एवं गणित के समस्त नियम-सिद्धांत निष्फल सिद्ध हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने इस स्थिति को 'गुरुत्वीय विलक्षणता' नाम दिया है। किसी अज्ञात कारण से इसी सूक्ष्म बिंदु से एक तीव्र विस्फोट हुआ तथा समस्त द्रव्य इधर-उधर छिटक गया। इस स्थिति में किसी अज्ञात कारण से अचानक ब्रह्मांड का विस्तार शुरू हुआ और दिक्-काल की भी उत्पत्ति हुई। इस घटना को ब्रह्मांडीय विस्फोट का नाम दिया गया। अंग्रेज ब्रह्मांड विज्ञानी सर फ्रेड हॉयल ने इस सिद्धांत की आलोचना करते समय मजाक में ये शब्द गढ़े—'बिग बैंग'।

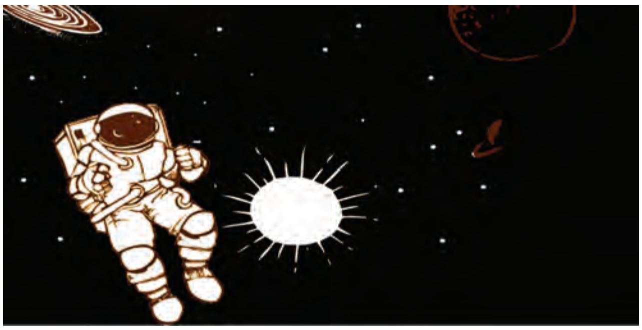

बिग बैंग सिद्धांत ब्रह्मांड की उत्पत्ति का सबसे अधिक मान्य सिद्धांत है। परंतु जिस सैद्धांतिक स्थित पर भौतिकी या गणित प्रकाश डालने में असमर्थ है, उसको मानने के हमारे पास क्या सबूत हैं? दरअसल भौतिकी को अपने सिद्धांतों पर उस समय संदेह हो जाता है, जब वे उसे अनंत की तरफ ले जाते हैं। बहरहाल, बात सबूत की है। वैज्ञानिक जॉर्ज गैमो ने 1940 के दशक में यह अनुमान लगाया कि बिग बैंग ने उत्पत्ति के कुछ समय में ब्रह्मांड को उच्च तापमान विकिरण से भर दिया होगा! उन्होंने यह भी अनुमान लगाया था कि ब्रह्मांड के विस्तार ने उच्च तापमान विकिरण को धीरे-धीरे ठंडा कर दिया होगा और उसके अवशेष माइक्रोवेव के रूप में देखे जा सकते हैं। वर्ष 1965 में आर्नो पेंजियाज और रॉबर्ट विल्सन ने अनजाने में ही माइक्रोवेव विकिरण की खोज की। इस बड़े सबूत के कारण ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बिग बैंग सिद्धांत को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है।

स्थायी अवस्था सिद्धांत

20वीं सदी के प्रतिभाशाली ब्रह्मांड विज्ञानी फ्रेड हॉयल ने अंग्रेज गणितज्ञ हरमान बांडी और अमेरिकी वैज्ञानिक थॉमस गोल्ड के साथ संयुक्त रूप से ब्रह्मांड की उत्पत्ति का सिद्धांत प्रस्तुत किया। यह सिद्धांत 'स्थायी अवस्था सिद्धांत' के नाम से विख्यात है। इस सिद्धांत के अनुसार, न तो ब्रह्मांड का कोई आदि है और न ही कोई अंत। यह समयानुसार अपरिवर्तित रहता है। यद्यपि इस सिद्धांत में प्रसरणशीलता समाहित है, परंतु फिर भी ब्रह्मांड के घनत्व को स्थिर रखने के लिए इसमें पदार्थ स्वतः रूप से सृजित होता रहता है। जहाँ ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सर्वाधिक मान्य सिद्धांत (बिग बैंग सिद्धांत) के अनुसार पदार्थों का सृजन अकस्मात हुआ, वहीं स्थायी अवस्था सिद्धांत में पदार्थों का सृजन हमेशा चालू रहता है।

हॉयल ने बिग बैंग सिद्धांत की अवधारणाओं के साथ असहमति क्यों प्रकट की? दरअसल हॉयल जैसे दार्शनिक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए ब्रह्मांड के आदि या आरंभ जैसे विचार को मानना अत्यंत कष्टदायक था। ब्रह्मांड के आरंभ (सृजन) के लिए कोई कारण और सृजनकर्ता (कर्ता) होना चाहिए। वर्तमान में इस सिद्धांत के समर्थक न के बराबर हैं।

दोलायमान ब्रह्मांड सिद्धांत

ब्रह्मांड की उत्पत्ति का यह एक नया सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार हमारा ब्रह्मांड करोड़ों वर्षों के अंतराल में विस्तृत और संकुचित होता रहता है। डॉ. एलन संडेज इस सिद्धांत के प्रवर्तक हैं। उनका मानना है कि आज से 120 करोड़ वर्ष पहले एक तीव्र विस्फोट हुआ था और तभी से ब्रह्मांड फैलता जा रहा है। 290 करोड़ वर्ष बाद गुरुत्वाकर्षण बल के कारण इसका विस्तार रुक जाएगा। इसके बाद ब्रह्मांड संकुचित होने लगेगा और अत्यंत संपीडित और अनंत रूप से बिंदुमय आकार धारण कर लेगा, उसके बाद एक बार पुनः विस्फोट होगा तथा यह क्रम चलता रहेगा!

अब सवाल यह उठता है कि क्या हमने लेख के शुरू में उठाए सभी मूलभूत प्रश्नों के उत्तर पा लिए हैं? नहीं! हम किसी भी प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं ढूँढ़ पाए। इससे साबित होता है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में कोई भी सिद्धांत संपूर्ण नहीं है। वास्तव में हम ब्रह्मांड के बारे में केवल चार प्रतिशत ही जानते हैं, बाकी 96 प्रतिशत के बारे में हमें न के बराबर जानकारी है। इस जानकारी के अभाव में ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में कोई भी मान्यता अधूरी है। अतः ब्रह्मांड की उत्पत्ति के इन नवीन सिद्धांतों में सुधार की काफी गुंजाइश है।

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
दिनों के नाम	**दिननामानि**	**दिनां दे नांव**	**दिनों के नाम**	**दोहन हुंद्य नाव**	**डींहंनि जा नाला**	**दिवसांची नांव**	**दिसांची नांवां**	**दिवसनां नामो**	**दिनहरूको नाउँ**	**दिनेर नाम**
इतवार (रविवार)	रविवासरः	ऐतवार	यकशँबा, इतवार	आथवार	आर्तवारु, रवीवारु	रविवार, आदित्यवार	आयतार	रविवार, आतवार	आइतबार, आदित्यबार	रबिबार
सोमवार (चंद्रवार)	सोमवासरः	सोम (वार)	दोशँबा, पीर	चॅन्दरवार	सूमरु, सोमवारु	सोमवार	सोमार	सोमवार	सोमबार, सौंबार	सोमबार
मंगलवार	मङ्गलवार	मंगल (वार)	सह शंबा, मंगल	ब्वंवार	मंगलु, अड़ारो	मंगळवार	मंगळार	मंगळवार	मङ्गलबार	मंगलबार
बुधवार	बुधवासरः	बुध (वार)	चहार शँबा, बुध	बव्दवार	बुधरु	बुधवार	बुधवार	बुधवार	बुधबार	बुधबार
गुरुवार (बृहस्पतिवार)	बृहस्पतिवासरः, गुरुवासरः	वीर (वार)	जुमेरात	ब्रसवार	विस्पति	गुरुवार	बिरेस्तार	गुरुवार	बृहस्पतिबार	बृहस्पतिबार, गुरुबार
शुक्रवार	शुक्रवासरः	शुक्कर (वार)	जुमुआ, जुमा	शोकरवार	जुमो, थारूं	शुक्रवार	शुक्रार	शुक्रवार	शुक्रबार	शुक्रबार
शनिवार (शनीवार, शनिश्चर)	शनिवासरः	सनिच्चर (वार) छनिच्छर	शंबा, हफ्ता	बटवार	छंछरु शनीवारु	शनिवार	शेनवार	शनिवार	शनिबार, शनिश्चरबार	शनिबार
दिशा	**दिक्**	**दिशा**	**सम्त**	**तरफ**	**तरफ़ूं, दिशा**	**दिशा**	**दिशा, दिका**	**दिशा**	**दिशा**	**दिक्, दिशा**
उत्तर	उत्तरदिक्	उत्तर (पहाड़)	शिमाल	वोतुर, शुमाल	उतरु	उत्तर	उत्तर	उत्तर	उत्तर	उत्तर
दक्षिण (दक्खिन)	दक्षिणदिक्	दक्खण	जुनूब	दख्युन, जोनूब	डखणु	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण, दख्खण	दक्षिण, दक्खिन	दक्षिण (क्ख) (न)
पश्चिम (पच्छिम)	पश्चिमदिक्	पच्छम (लहिंदा)	मग्रिब	पछुम, मगरिब	ओलहु	पश्चिम	पश्चिम, अस्तम	पश्चिम आथमणी दिशा	पश्चिम	पश्चिम
पूर्व (पूरब)	पूर्वदिक्	पूरब (चढ़दा)	मश्रिक	पूर, मशरिख	ओभरु	पूर्व	पूर्व, उदेंत	पूर्व उगमणी दिशा	पूर्व	पूर्व

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
दिवसर नाम बारर नाम	**नुमित्शिङ्गी ममिङ्**	**दिनर नाम**	**वारमुलु**	**नाट्कळिन् पेयर्गळ्**	**आळ्च- प्पेरुकळ**	**दिनगळ- हेसरु**	**दिनें दे नां**	**माहा क भुतुम**	**दिनक नाम**	**बारायफोरनि मुं**
देओबार, रबिबार	नोङ्माइजिङ्	रबिबार	आदिवारमु	ञायिट्टु- क्किऴमै	ञायराळच	आदित्यवार रविवार, भानुवार	तार, ऐतवार	सिंगे माहा	रविवार, रवि	रबिबार देवबार हाथिबारि
सोमबार	निङ्थौकाबा	सोमबार	सोमवारमु	तिंगट्किऴमै	तिंकळाळच	सोमवार	संङार सोमवार	आते माहा	सोमवार सोम	समबार, सिमबारि
मंगलबार	लैबाक् पोक्पा	मंगलबार	मंगळवारमु	सेव्वाय किऴमै	चोव्वाळच	मंगळवार	मंगल (वार)	बाले माहा	मंगलवार, मंगल	मंगलबार मारबारि
बुधवार	युमशकैश	बुधवार	बुधवारमु	बुदन् किऴमै	बुधनाळच	बुधवार	बुद्धवार	सागुन माहा	बुधवार, बुध	बुदबार, बुधारि
बृहस्पतिबार, गुरुबार	शगोलसेन	गुरुबार	गुरुवारमु	वियाऴक्किळमै	व्याऴाऴच	गुरुवार	बीर, गुरूवार	सारदिमाहा	बृहस्पति	बिस्थिबार
शुकुरबार	इराई	शुक्रबार	शुक्रवारमु	वेळ्ळिक् किऴमै	वेळ्ळियाऴच	शुक्रवार	शुक्कर (वार)	जारुम माहा	शुक्रवार, शुक्र	सुखुरबार, सुखि
शनिबार	थाङ्ज	शनिबार	शनिवारमु	शनिक्किऴमै	शनियाऴच	शनिवार	बार, शनिवार	ञुहुम माहा	शनिवार, शनि	सुनिवार, सिंसि
दिक्, फाल	**माइकै**	**दिग**	**दिशलु**	**दिशैगळ्**	**दिक्कुकळ्**	**दिक्कु**	**दिशा**	**दिग, पासटा नाखा**	**दिशा**	**दिग**
उत्तर	अवाङ थङबा	उत्तर	उत्तरमु	वडक्कु	वटक्कुॅ	उत्तर	प्हाड़, उत्तर	उत्तर नाखा	उत्तर	सा (साहा)
दक्षिण	मखा थङ्बा	दक्षिण	दक्षिणमु	तेर्कु	तेक्कुॅ	दक्षिण	दक्खन	दाखिन	दक्षिण, दच्छिन	खोला
पश्चिम पछिम	नोंचुप मनीङ् थडबा	पश्चिम	पश्चिममु, पडमर	मेर्कु	पटिञ्ञारुॅ	पश्चिम, पडुवण	घरोदा, लैंहदा, पच्छम	पुछिम नाखा	पश्चिम, पच्छिम	सोनाब
पूर्ब, पूब	नोंपोक ममाङ् थङबा	पूर्ब	तूर्पु	किळक्कु	किळक्कु	पूर्व, मूंडण	चढ़दा, पूरब	पुरुब नाखा	पूर्व, पूब	सानजा

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

गांधीजी की श्रद्धांजलियाँ

—यू.एस. मोहन राव

अनुवाद : रामेश्वर मिश्र 'पंकज'

दुनिया में प्रतिघंटे लगभग 15,000 शिशु जन्म लेते हैं और प्रतिघंटे लगभग 6,316 लोग काल के गाल में समा जाते हैं, लेकिन बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जिनके आगे दुनिया झुकती है। वास्तव में ऐसे लोगों ने मानवीय सेवा करके लोगों की विचारधारा को ही बदल कर रख दिया है। ऐसे ही जनसेवी विचारकों को महान पत्रकार महात्मा गांधी ने कलम से श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने समाचार पत्रों में स्थान दिया है।

मैक्सिम गोर्की

रूस के लोगों और हमारे देश के लोगों के बीच किसी हद तक तुलना की जा सकती है। हम गरीब हैं, रूस की जनता भी गरीब है। हमें राजकाज चलाने का कोई अधिकार नहीं है और चुपचाप कर चुकाने पड़ते हैं, उसी प्रकार रूस के लोगों को भी करना पड़ता है। रूस में ऐसे कष्टों को देखकर कुछ अत्यंत वीर पुरुष सामने आ जाते हैं। कुछ समय पहले रूस में विद्रोह हुआ। उसमें जिन्होंने मुख्य भाग लिया उनमें मैक्सिम गोर्की भी थे। वे बहुत गरीबी में पले थे। शुरू में उन्होंने एक मोची के यहाँ नौकरी की। वहाँ से उनको छुट्टी दे दी गई। फिर उन्होंने कुछ समय तक सिपाहीगिरी की। उस समय उन्हें अध्ययन करने की तीव्र अभिलाषा हुई, लेकिन गरीब होने के कारण किसी अच्छी पाठशाला में प्रवेश नहीं मिल सका। उसके बाद उन्होंने एक वकील के यहाँ नौकरी की और अंत में एक नानबाई के यहाँ फेरीदार का काम किया। इस बीच सारे समय उन्होंने निजी परिश्रम से शिक्षा प्राप्त करने का कार्य जारी रखा। उन्होंने सन 1892 में अपनी पुस्तक लिखी जो इतनी रोचक थी कि उससे उनकी ख्याति तुरंत फैल गई। उसके बाद उन्होंने बहुत-सी रचनाएँ लिखीं। इन सबके पीछे उनका उद्देश्य लोगों को उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ जागरूक करना था, जिससे सत्ताधीशों के कान खड़े किए जाएँ और यथासंभव जनता की सेवा की जाए। वे पैसा कमाने की कुछ भी परवाह न करके ऐसे तीखे लेख लिखते हैं कि उन पर अधिकारियों की कड़ी निगाह रहती है। वे लोक सेवा करते हुए जेल भी हो आए हैं, किंतु इसे अपना सम्मान समझते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यूरोप में लोगों के अधिकारों की रक्षा करने वाला मैक्सिम गोर्की के समान कोई दूसरा लेखक नहीं है। (गुजराती से) इंडियन ओपिनियन, 01 जुलाई, 1905।

गणेश शंकर विद्यार्थी

गणेश शंकर विद्यार्थी की शहादत तो ईर्ष्या योग्य है। उनका रक्त वह सीमेंट है, जो अंततः दोनों समुदायों को परस्पर जोड़ेगा। किसी समझौते से हमारे दिल नहीं मिल सकते। बल्कि गणेश शंकर विद्यार्थी ने जो वीरता दिखाई है, वैसी वीरता ही आखिर में पत्थर दिल को भी पिघलाकर रहती है और फिर सबको एकता में ढालता है। पर जहर इतनी गहराई तक फैल चुका है कि इतने महान, इतने आत्मोत्सर्ग वाले और इतने वीर गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे व्यक्ति का खून भी इस जहर को धो पाने के लिए आज काफी नहीं है। इस उत्कृष्ट उदाहरण ने हम सबको ऐसे अवसर पर ऐसे ही प्रयासों की प्रेरणा दी। शोकमग्न विधवा और उनके बच्चों के प्रति मेरी शोक संवेदनाएँ, पर साथ ही गणेश शंकर विद्यार्थी जैसा आत्मीय उन्हें मिला, इसकी बधाइयाँ भी। वे मरे नहीं हैं। सशरीर जैसे वे हमें दिखते थे, और जितना हम उन्हें जान पाते थे, उससे कहीं अधिक उनका सच्चा स्वरूप और उनके बारे में सच्ची समझ अब हमारे पास है। (यंग इंडिया, 09 अप्रैल, 1931)।

सी.एफ. एंड्रयूज

सी.एफ. एंड्रयूज के देहावसान से न केवल इंग्लैंड या भारत ने, बल्कि मानवता ने एक सच्चा सपूत और सेवक खो दिया है। तथापि मृत्यु ने उन्हें उनके कष्टों से मुक्ति दिलाई है और इस धरती पर उनका जो मिशन था, उसे पूर्णता प्रदान की है। जिन हजारों लोगों ने उनके आत्मीय सान्निध्य से अथवा उनके लिखित विचारों के संपर्क से अपने आपको समृद्ध किया है, उनके माध्यम से वे सदा जीवित रहेंगे। मेरी दृष्टि में चार्ली एंड्रयूज महानतम और श्रेष्ठतम अंग्रेजों में से एक थे। और चूँकि वे इंग्लैंड के एक अच्छे सपूत थे, इसलिए वे भारत के भी सपूत बन सके। यह सब उन्होंने मानवता के हित और अपने प्रभु तथा स्वामी ईसा मसीह के लिए किया। मेरी दृष्टि में आज तक उनसे कोई श्रेष्ठतर मनुष्य या अधिक अच्छा ईसाई नहीं आया है। भारत में उन्हें दीनबंधु की उपाधि से विभूषित किया। सभी देशों के दीनों और दलितों के सच्चे मित्र होने के नाते वे इस उपाधि के सर्वथा पात्र थे। (प्रेस वक्तव्य, हरिजन 13 अप्रैल, 1940)।

सुभाषचंद्र बोस

आजाद हिंद फौज का सम्मोहन हम पर छा रहा है। नेताजी के नाम में जादुई ताकत है। उनकी देशभक्ति किसी से कम नहीं है। वर्तमान काल का प्रयोग मैं जानबूझकर कर रहा हूँ। उनके सभी कामों के द्वारा उनकी बहादुरी ही चमकती है। उनके इरादे बुलंद थे, पर असफल रहे। लेकिन असफल कौन नहीं हुआ? हमें ऊँचे और अच्छे लक्ष्य रखने चाहिए। सफलता तो हर एक को मिल नहीं सकती। (हरिजन, 24 फरवरी, 1946)।

(राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित पुस्तक 'शब्द चित्र एवं श्रद्धांजलियाँ : गांधीजी' से साभार)

विश्व-राजनीति एवं भारतीय विदेश नीति पर महात्मा गांधी का प्रभाव

साबरमती के संत की छाप यों तो जीवन के लगभग सभी विमाओं पर है, पर विदेश नीति के संदर्भ में गांधी का प्रभाव अवश्य ही वह विषयभूमि है जिस पर कम ही चर्चा देखने को मिलती है। उपनिवेशवाद की आग का जवाब देने की ज़िम्मेदारी प्रत्येक उपनिवेश को अपनी स्वतंत्रता संघर्षों के समानांतर ही उठानी होती है, क्योंकि उपनिवेशवाद अपने प्रभाव में व्यक्ति व राष्ट्र के लगभग सभी आयामों पर निर्मम प्रहार करता है और उन्हें इस कदर विवश कर जाता है कि स्वतंत्रता की चाह ही कइयों को अनापेक्षित व हास्यास्पद लगने लगती है। यही मानसिकता, उपनिवेशवाद के भीतर भी तमाम अच्छाईयाँ देखने को उकसाती है और अंततः स्वतंत्रता को और दूर की कौड़ी बना देती है। इससे लड़ने के लिए एक वैचारिक

डॉ. श्रीश पाठक

अंतरराष्ट्रीय राजनीति के जानकार, साहित्य, सिनेमा में रुचि।

संप्रति : एमिटी इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज में सहायक अध्यापक।

लेखन : विभिन्न समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में संपादकीय आलेख, नवोत्पल साहित्यिक समूह का संयोजन, राजनीति शास्त्र व्याख्याता।

संपर्क :

ईमेल–shreesh.prakhar@gmail.com

संघर्ष भी समानांतर खड़ा करना होता है, जिसे ही उत्तर-उपनिवेशवाद कहते हैं। महात्मा गांधी भारतीय उत्तर-उपनिवेशवाद के संघर्ष के सर्वाधिक मजबूत स्तंभ हैं। उत्तर-उपनिवेशवाद के बौद्धिक अभ्यास से ही स्वतंत्र राष्ट्र आखिरकार किन दार्शनिक आधारों पर खड़ा होगा जिससे कि औपनिवेशिक कुप्रभावों से जूझा जा सके, इसके स्रोत भी निर्मित होते हैं। स्वतंत्र राष्ट्र भारत की स्वतंत्र विदेश नीति जिस जमीन पर खड़ी है, उसका एक बड़ा प्रभावी हिस्सा महात्मा गांधी के विचारों का है। यों तो विशाल भारत की विशद सनातन परंपरा को देखते हुए कई अन्यान्य मानवीय मूल्यों के स्रोत के रूप में एकमात्र महात्मा गांधी को देखना तो तार्किक न होगा, किंतु परतंत्रता के उस समय में जबकि शासन व्यवस्था यह स्थापित करने की जिद में हो कि भारत में किन्हीं भी मूल्यों की कोई मजबूत परंपरा ही नहीं रही है, महात्मा गांधी का बौद्धिक व कार्यकारी योग फिर स्वर्णिम महत्व का हो जाता है।

महात्मा गांधी : वैश्विक-राष्ट्रीय सहभागिता

महात्मा गांधी का स्पष्ट मानना था कि अंग्रेजों से नहीं, अंग्रेजियत से घृणा करनी चाहिए। उन्हें अंग्रेजों से कोई विभेद नहीं था, वे पश्चिम के नहीं, पश्चिमीकरण के खिलाफ थे। उस समय एक पराधीन राष्ट्र के किसी व्यक्ति को अंतरराष्ट्रीय समर्थन मिलना अकल्पनीय था। लेकिन अपनी समावेशी संकल्पना के बल पर गांधी, दक्षिण अफ्रीका, इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, रूस सहित कई देशों के निवासियों से प्रभावी रूप से जुड़े हुए थे और निरंतर संवाद में थे। विश्व-राजनीति में साख ही एकमात्र मुद्रा है और साख धीरे-धीरे बनती है। महात्मा गांधी का एक अंतरराष्ट्रीय व्यक्तित्व के रूप में उभरना, विश्व में भारत की एक लोकतांत्रिक छवि को गढ़ने में मदद करता है। बोअर युद्धों में (1897-99) और जुलू विद्रोह में (1906) अफ्रीका में रह रहे गांधी, मानवीय आग्रह के आधार पर एम्बुलेंस

कॉर्प्स का गठन कर जब अंग्रेजों की मदद करते हैं तो भी गांधी का लक्ष्य भारतीय राष्ट्रहित ही था, राष्ट्रहित ही किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य होता है। दक्षिण अफ्रीका में गिरमिटिया मज़दूरों के लिए किया गया संघर्ष महात्मा गांधी को न केवल अपने देश भारत में लोकप्रिय बनाता है, अपितु उन्हें उपनिवेशवाद के दौर में एक शांतिप्रिय योद्धा की वैश्विक छवि प्रदान करती है।

1918 के शुरुआत में गांधी के इसी व्यापक प्रभाव को स्वीकारते हुए ब्रिटिश वाइसरॉय, दिल्ली में आयोजित वार कॉन्फ्रेंस में गांधी को आमंत्रित करते हैं और जहाँ गांधी एक नैतिक आशा में सहमति देते हैं और 'अपील फॉर एनलिस्टमेंट' के शीर्षक से पर्चा लिखकर भारतीय युवाओं से युद्ध में भाग लेने का आह्वान करते हैं। प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन ने टर्की को परास्त कर दिया तो उन्होंने वहाँ के सुलतान खलीफा को गद्दी से उतार दिया और खिलाफत व्यवस्था को ही समाप्त कर दिया। इसका प्रभाव, समस्त विश्व के मुसलमानों पर पड़ा। उनकी धार्मिक भावनाएँ इससे आहत हुई थी। 1920 में मुस्लिम वर्ल्ड के दिल्ली आयोजन में महात्मा गांधी ने उच्च स्वर में ब्रिटेन की इस नीति की आलोचना की और टर्की को सभी संभव सहायता करने की अपनी मंशा ज़ाहिर की। यहाँ, गांधी सफलतापूर्वक आगामी भारतीय विदेश नीति के नींव की एक महत्वपूर्ण ईंट रख रहे थे। 1929 में कांग्रेस के द्वारा पूर्ण स्वराज की माँग पर अड़ने के पश्चात अप्रैल 1930 से देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारंभ हुआ। यह एक जनांदोलन था और यह ब्रिटिश हुकूमत पर एक भारी वैश्विक दबाव डाल रहा था। अंततः महात्मा गांधी और लॉर्ड इरविन के बीच समझौता हुआ, आंदोलन रोका गया और महात्मा गांधी को द्वितीय चरण के गोलमेज कॉन्फ्रेंस में कांग्रेस की ओर से अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के छिड़ने पर ब्रिटिश एक बार फिर महायुद्ध में भारतीय युवकों का सहयोग चाहते थे। इसके बदले में क्रिप्स ने यह वादा किया कि भारत को डोमिनियन स्टेटस प्रदान कर दिया जाएगा, इसका विरोध गांधी ने यह कहकर किया कि यह तो 'एक लुढ़कते बैंक का पोस्टडेटेड चेक' है। गांधी सहित सभी भारतीय नेता, इस महायुद्ध में भारतीयों के झोंके जाने के विरुद्ध थे। इस संदर्भ में यदि अमेरिका को ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल को ख़त लिखकर यह कहना पड़ा कि भारतीयों के लिए वे अपना पक्ष और भी नम्र करें तो यह एक सशक्त परिचायक है कि औपनिवेशिक भारत को भी वैश्विक स्तर पर सुना जाने लगा था। ब्रिटेन के रुख में कोई खास तब्दीली न देख और भारत की सुदूर पूर्वी सीमा पर बढ़ते एक दूसरे साम्राज्यवादी देश जापान जो कि द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन के खिलाफ आगे बढ़ रहा था; महात्मा गांधी ने राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया।

भारतीय विदेश नीति के निर्माता जवाहरलाल नेहरू के नीति-निर्देशक के रूप में महात्मा गांधी

स्वतंत्रता पश्चात जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री बने जिन्हें महात्मा गांधी अपना राजनीतिक वारिस कहते थे। भारतीय विदेश नीति में गांधी का प्रभाव यथार्थिक स्तर पर ढालने में नेहरू ने अपना अप्रतिम योग दिया। जवाहरलाल नेहरू की विदेश नीति के लगभग सभी आयामों पर गांधी का प्रभाव देखा जा सकता है। समस्त विश्व में जब विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई और भारत सहित दुनिया के तमाम मुल्क आज़ाद होने लगे तो उस समय की दुनिया दो खाँचों में बँटी हुई थी। शीतयुद्ध का समय आसन्न था। देश या तो अमेरिकी कैंप में थे अथवा सोवियत कैंप में स्वयं को सहेज रहा था। विश्व पिछले 50 सालों में दो-दो विश्वयुद्धों की विभीषिका को देख चुका था और यह भी कि साम्राज्यवादी ताकतों ने किस तरह अपने जर्जर शोषित उपनिवेशों को भी इसमें धकेल दिया था। नवस्वतंत्र राष्ट्र जो कि सदियों शोषण के शिकार हुए थे और जिन्हें विकास का एक लंबा रास्ता तय करना था, वे यदि विश्व-राजनीति में किसी कैंप राजनीति को चुनेंगे अथवा नहीं चुनेंगे, दोनों ही विकल्पों में उन्हें बेहद गंभीर चुनौतियों से भिड़ना था। यहीं पर जवाहरलाल नेहरू के लिए जो मध्यम मार्ग उपलब्ध था, उसकी आधुनिक व्याख्या उनके नीति-निर्देशक महात्मा गांधी न केवल कर चुके थे, बल्कि कई अवसरों पर पूर्व ही उसे सफलतापूर्वक प्रयोग भी कर चुके थे।

भारत जैसा विशाल देश यदि उन परिस्थितियों में गुटनिरपेक्ष आंदोलन को चुनता है तो इस निर्णय के लिए आवश्यक आत्मविश्वास जवाहरलाल नेहरू में महात्मा गांधी के विश्व प्रसिद्ध सिद्धांतों सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह से उपजता है, इसमें संशय नहीं है। दो-दो विश्वयुद्धों वाले विश्व राजनीति में यथार्थवाद और आदर्शवाद दो ही प्रमुख विचारधाराएँ अपने समाधानों और सीमाओं के साथ उपलब्ध थीं, जिनमें किसी नए राष्ट्र का प्रमुख अपनी विदेश नीति का निर्वहन करे। यह अंततः राष्ट्र को किसी-न-किसी कैंप से जोड़ ही देता और राष्ट्र फिर न ही किसी स्वतंत्र विदेश नीति की परंपरा गढ़ पाता, बल्कि किसी आसन्न युद्ध की आशंका में ही अपने विकास को स्थगित कर रहा होता। महात्मा गांधी यहाँ अपने अहिंसात्मक व नैतिक गांधीवाद के साथ जवाहरलाल नेहरू का दार्शनिक निर्देशन करते दिखते हैं क्योंकि जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तिगत झुकाव एक खास हद तक समाजवाद की ओर था। यदि नेहरू की विचारधारा में गांधी का संस्पर्श हटा लें तो वह नैतिक आदर्शवाद जो नेहरू की विदेश नीति का मूल था और जो कवच बनकर अराजक वैश्विक संरचना में भारत को किसी अनापेक्षित ताप से बचाता है, उसकी संभावना ही विरल हो जाती। गांधीवादी सिद्धांतों की चमक में नेहरू की विदेश नीति ने अपने लिए जो एक उच्च नैतिक

आधार निर्मित किया, उससे एक नवस्वतंत्र राष्ट्र को सहसा ही विश्व के प्रमुख देशों में स्थान दिला दिया। उत्तर-दक्षिण संवाद, नव आर्थिक क्रम की माँग, रंगभेद का विरोध, उपनिवेशवाद-साम्राज्यवाद का विरोध आदि कई वैश्विक माँगों के केंद्र में यदि नेहरू, भारत को रख

> **विश्व की व्यवस्थाएँ बहुधा किसी द्विपक्षीय विभाजन में बँटने को उकसाती हैं, यहाँ गांधीवाद सचेत हो मध्यम मार्ग की प्रेरणा देता है। यथार्थवाद जहाँ राष्ट्रहित को ही नैतिक मूल्य मान किसी देश को कोई भी कदम उठाने को कहता है और आदर्शवाद जहाँ राष्ट्रहित के लिए वार्ता व आर्थिक संबंधों को वरीयता देने को कहता है वहीं गांधी का वैश्विक सत्याग्रह उच्च नैतिक मानवीय मूल्यों को वरीयता देने को कहता है।**

सके तो यकीनन इसमें गांधी का योग अनदेखा नहीं किया जा सकता। भारत के विदेश नीति की स्वतंत्रता, नेहरू के पंचशील की नीति, निःशस्त्रीकरण की नीति, वैश्विक शांति पक्षधरता की भूमिका, राष्ट्रों से अहिंसक भागेदारी की नीति, पड़ोसी देशों से सीमा विवादों को परस्पर सम्मान व शांति से निपटाने की नीति, आदि जो निर्णायक तत्व भारतीय विदेश नीति की प्रस्तावना रचते हैं, उसमें गांधीवादी तत्वों का असर स्पष्ट झलकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भी चूँकि जवाहरलाल नेहरू ही कांग्रेस के विदेश नीति संबंधी प्रस्तावों को मुख्यतया लिखा करते थे तो गांधी का प्रभाव एक लंबे समय से अपनी निर्णायक भूमिका निभा रहा था। 1927 में ही कांग्रेस ने विदेश नीति पर अपने एक प्रस्ताव में स्पष्ट कर दिया था कि देश किसी भी प्रकार के औपनिवेशिक युद्ध में परिभाग नहीं करेगा और बिना भारतीय जन आकांक्षाओं के देश को किसी युद्ध में नहीं झोंका जाना चाहिए।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन को अपनाने की नीति कितनी सफल रही, यह इससे समझा जा सकता है कि शीत युद्ध के दौरान जबकि अधिकांश देश इधर या उधर के पक्षों से अपनी सुरक्षा अथवा बचाव में संलग्न थे, भारत अपने विकास कार्यों के लिए अमेरिका से सर्वाधिक अनुदान पाने वाला राष्ट्र बना। भारत के संबंध न सोवियत रूस से अधिक दूरी के थे और न ही अमेरिका से ही कोई खास दूरी में पनप रहे थे। कांगो मुद्दे पर भारत की अमेरिकी प्रशासन को दी गई सहायता बेहद कारगर रही। आगे 1950-53 के मध्य उपजे कोरियाई युद्ध से निपटने में किए गए भारतीय शांति प्रयासों के लिए भारत को 'न्यूट्रल नेशन रीपैट्रीयेशन कमीशन' का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। 40 के दशक में भारतीय-चीनी शांति प्रयासों के लिए भारत को जिनेवा समझौतों के तहत बनने वाले 'इंटरनेशनल कंट्रोल कमीशन' की अध्यक्षता भी दी गई। यदि भारत गुटनिरपेक्षता से सर्वपक्षधरता की यात्रा कर सका और राष्ट्रहित की सुरक्षा अपने प्रारंभिक दिनों में कर सका तो इसके लिए नेहरू के साथ-साथ महात्मा गांधी के सिद्धांतों और उनके वैश्विक प्रभावों को दिया जाना असंगत नहीं होगा।

गांधीवादी उपकरणों की वैश्विक उपस्थिति व विदेश नीति में इसकी समकालीन प्रासंगिकता

महात्मा गांधी के सिद्धांतों का असर ऐसा नहीं है कि केवल भारत की विदेश नीति में ही दिखलाई पड़ता है, अपितु बहुत-से देशों में लोगों ने, उनके नेताओं ने, उनकी संसदों ने जब-तब गांधीवादी तरीकों से लोकतांत्रिक लक्ष्य हासिल किए हैं और उनके दार्शनिक योगदान को रेखांकित भी किया है। वैश्विक सत्याग्रह एक सिद्धांत के रूप में पूरे विश्वभर में प्रयुक्त किया जाता है। पाकिस्तान के खान अब्दुल गफ्फार खाँ को तो 'सीमांत गांधी' कहा ही जाने लगा था। अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने रंगभेदी अभियानों में गांधी को एक प्रेरक के रूप में देखा था। दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला, गांधी के प्रभाव को स्वीकारते हैं। अमेरिका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति बराक ओबामा अपने शपथ ग्रहण में गांधी को स्मरण करते हैं।

प्रायः यह कहा जाता है कि गांधी के सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत आज के जटिल राष्ट्रगत संबंधों, अराजक वैश्विक राजनीति व्यवस्था की चुनौतियों एवं निर्मम वैश्वीकरण के दबावों में सर्वथा अनुपयुक्त और अप्रासंगिक हैं। किंतु, यह एक सरसरी तौर पर किया गया आकलन है। विश्व की व्यवस्थाएँ बहुधा किसी द्विपक्षीय विभाजन में बँटने को उकसाती हैं, यहाँ गांधीवाद सचेत हो मध्यम मार्ग की प्रेरणा देता है। यथार्थवाद जहाँ राष्ट्रहित को ही नैतिक मूल्य मान किसी देश को कोई भी कदम उठाने को कहता है और आदर्शवाद जहाँ राष्ट्रहित के लिए वार्ता व आर्थिक संबंधों को वरीयता देने को कहता है वहीं गांधी का वैश्विक सत्याग्रह उच्च नैतिक मानवीय मूल्यों को वरीयता देने को कहता है।

भारतीय विदेश नीति में जब भी भारत को किसी भी राष्ट्र से संबंधों की आयोजना करनी होती है तो पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी, भारत की मानवीय एवं लोकतांत्रिक साख को पुष्ट कर रहे होते हैं। महात्मा गांधी का भारतीय होना विश्व राजनीति में भारत को एक त्वरित पहचान दिलाता है जहाँ से वार्ता के विभिन्न संस्तर आसान हो जाते हैं। विश्व राजनीति में साख और छवि से ही संबंधों का निर्वहन किया जाता है और भारत के लिए ये दोनों ही गांधी के द्वारा निर्मित नैतिक राजपथ पर उपलब्ध होते हैं। महात्मा गांधी, एक अनुकरणीय व्यक्तित्व के रूप में, अपने विचारों से एवं अपनी जीवनकालीन वैश्विक सक्रियता से जो भारत के लिए अर्जित किया है, वही आज भारतीय विदेश नीति की थाती के रूप में हमारे पास उपलब्ध है, हमारे देश को यह किसी संकीर्ण खाँचे में नहीं बाँधती, विश्व शांति के हमारे संकल्पों को दृढ़ रखती है और किसी भी प्रकार के वैश्विक अन्याय व असमानता के विरुद्ध भारत को दृढ़तापूर्वक डटे रहने को निरंतर प्रेरित करती रहती है।

भारतीय संस्कृति की पहचान है सामाजिक इतिहास

आदिकाल में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है, वह सामाजिक इतिहास का क्षेत्र है। वह भारतीय संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित था। उत्सव, मेले, परिधान, आहार, विवाह, मनोरंजन आदि समाज शास्त्र का क्षेत्र है। समाज शास्त्र का विकास सामाजिक इतिहास के परिवेश में ही हुआ है।

इतिहास के क्षेत्र का वर्गीकरण वैज्ञानिक युग की देन है। सामाजिक इतिहास, इतिहास की एक सबसे महत्वपूर्ण शाखा है। कोम्ते के अनुसार इतिहास सामाजिक भौतिक शास्त्र है। इसके अंतर्गत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन किया जाता है। टायन्वी का कहना है कि इतिहास का निर्माण सामाजिक अणु तत्वों से हुआ है। इतिहास का विकास व्यक्तियों तथा राष्ट्रों से नहीं, बल्कि विभिन्न युगीन समाजों से हुआ है।

सामाजिक इतिहास के अभाव में इतिहास बंजर तथा अवर्णनीय है। आदिकाल से आधुनिक युग तक इतिहास क्षेत्र का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील रहा है। इसके विकसित स्वरूप का एकमात्र आधार विभिन्न युगों के सामाजिक मूल्य तथा उसकी सामाजिक आवश्यकताएँ रही है। समाज का क्षेत्र काफी विस्तृत है और समाज के सभी क्षेत्र के विषयों का इतिहासकार उचित विवरण एक साथ नहीं दे सकता है। इसलिए आधुनिक इतिहासकारों ने इतिहास क्षेत्र का वर्गीकरण किया है। आधुनिक इतिहासकारों के वर्ग में प्रत्येक इतिहासकार विशिष्ट विषय का विशेष ज्ञान रखता है और अपने ज्ञान से संबंधित सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य विषयों की विवेचना करता है। इसके अंतर्गत अनेक छोटी-से-छोटी शाखाओं पर शोध करके इतिहासकारों ने विशिष्ट ज्ञान को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इतिहासकारों ने पूर्वकालिक घटनाओं के आधार पर सामाजिक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए इतिहास क्षेत्र का वर्गीकरण किया है।

सामाजिक इतिहास को महत्वपूर्ण बनाने का श्रेय ट्रेवेलियन को जाता है। उन्होंने सामाजिक इतिहास के अंतर्गत अतीत में लोगों के दैनिक जीवन, परिवार का स्वरूप, विभिन्न वर्गों का पारस्परिक आर्थिक संबंध, ग्रहस्थ जीवन, श्रमिकों की दशा, प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण, सांस्कृतिक जीवन तथा सामान्य परिस्थितियों से उत्पन्न धर्म, साहित्य, संगीत, वास्तुकला, शिक्षा तथा साहित्य है। रेनिलर ने कहा है कि– सामाजिक इतिहास, आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि तथा राजनीति इतिहास की कटौती हैं। ट्रेवेलियन ने भी कहा है कि सामाजिक इतिहास के अभाव में आर्थिक इतिहास

संजय गोस्वामी

कार्यक्षेत्र : हिंदी विज्ञान के क्षेत्र में 500 से अधिक लेख विभिन्न विज्ञान तथा हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित।

पुरस्कार : विज्ञान लोकप्रिय के लिए– भारत गौरव 2011, डॉ. गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार, 2009, विज्ञान परिषद शताब्दी पुरस्कार 2013, डॉ. सी. वी. रमन विज्ञान संचार पुरस्कार, 2015।

संप्रति : वैज्ञानिक पत्रिका के प्रबंधक व ग्रामीण विकास संदेश के सह संपादक, तथा विज्ञान गंगा पत्रिका,(बीएचयू), सलाहकार बोर्ड के सदस्य।

संपर्क : मो.– 9869368950

ईमेल–sg234500@gmail.com

माध्यम तथा राजनीति इतिहास अवर्णनीय है। आदिकालीन परिस्थितियों को जानना अत्यधिक आवश्यक है। मनुष्य अपने जीवन में बहुत कुछ विगत से जानता व सीखता है।

सामाजिक विकास तथा परिवर्तन की प्रतियों का अध्ययन समाज शास्त्र के माध्यम से ही प्रारंभ हुआ। अतः सामाजिक इतिहास की विशेषता इसलिए भी है कि एक समाज की जितनी आवश्यकताएँ, समस्याएँ, विकास, उत्थान, पतन, भौगोलिक परिवेश, मानवीय कार्य एवं उनकी उपलब्धियाँ होती हैं, उन सबका संबंध समाज से होने के कारण सामाजिक इतिहास में इनका अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक इतिहास में निजी समाज से संबंधित भौगोलिक दशा, वातावरण, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, संवैधानिक, कानून, न्याय व्यवस्था, सुरक्षा व्यवस्था आदि का विवरण आवश्यक हो जाता है।

सभी इतिहासकारों का उद्देश्य सामाजिक मूल्यों तथा आवश्यकता के अनुसार इतिहास का प्रस्तुतिकरण करना होता है। हेरोडोटस ने मकाकाण्य युग में इतिहास की सामाजिक आवश्यकता को कहानी मात्र समझा था। लेकिन 20वीं सदी (1950-1980) में अधिकांश इतिहासकारों का ध्यान सामाजिक इतिहास की विशिष्टता की ओर गया। सामाजिक समस्याओं के प्रति चेतना ने इतिहास के क्षेत्र में रुचि पैदा की।

सामाजिक इतिहास की अपनी समस्याएँ हैं। इसका अध्ययन रोचक है। परंतु इसकी निरंतरता, भेदगति तथा परिवर्तन का अध्ययन अत्यंत जटिल है। राजनीतिक परिवर्तन को जीवन में सहज ही देखा जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन के कारण राजनीतिक परिवर्तन हो सकता है। एक राज्य, नया संसद, राजनीतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाते हैं, लेकिन उनके द्वारा किए गए परिवर्तन का प्रभाव सामाजिक जीवन पर नहीं पड़ता है।

भारतीय इतिहास में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण अनेक राजवंशों का उत्थान-पतन हुआ है। राजपूतों के पतन के बाद तुर्की, सुल्तानों, मुगलों तथा अंग्रेजों का शासन हुआ। परंतु इन परिवर्तनों ने सामाजिक परिवर्तन को प्रायः प्रभावित नहीं किया है। परिणामस्वरूप भारतीय समाज का मूल स्वरूप आज भी वही है, जैसा गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी के समय था—मानवता का धर्म, पवित्र और अपवित्र की धारणा, धार्मिक कर्मकांड। आदिकाल में सामाजिक, भक्ति, वीर तथा ऐतिहासिक, धार्मिक आदि, कई प्रवृत्तियाँ समाज व इतिहास से संबंधित हैं। भक्ति आंदोलन के समाज सुधारक रामानंद, कबीर, नानक तथा चैतन्य ने समाज सुधारने के लिए अथक प्रयास किया। राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू ने भी समाज सुधार का प्रयास किया। सांसद तथा विधानसभाओं ने अनेक नियम पारित किए। इतने प्रयास के बावजूद सामाजिक स्वरूप में किसी प्रकार का क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि सामाजिक परिवर्तन हुआ भी है तो वह भूमिगत और अगोचर रहा है, उसका सूक्ष्म निरूपण कठिन प्रतीत होता है।

इसी तरह राजनीतिक परिवर्तन के कारण अनेक सामाजिक प्रक्रिया का दौर भी चलता है। जैसे महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए स्वदेशी आंदोलन ने यहाँ भारतीय समाज में स्वदेशी कपड़ों के उपयोग के प्रति जागरूकता पैदा की। वहीं असहयोग आंदोलन ने समाज में होने वाले अंग्रेजों के अत्याचारों के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन को जन-आंदोलन का आधार दिया। साथ ही, शराबबंदी, छुआछूत की भावना में कमी, स्त्रियों की भूमिका के प्रति सोच में परिवर्तन आया। सामाजिक इतिहास में समाज से संबंधित इन सभी पहलुओं पर विचार किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक इतिहास संपूर्ण इतिहास क्षेत्र की रीढ़ है। इतिहास में जितने भी अन्य क्षेत्र हैं, उन सबका संबंध समाज से ही है। चाहे वे राजनीतिक हों, आर्थिक हों, संवैधानिक हों या सांस्कृतिक, समाज में इन सभी का सामाजिक इतिहास नहीं होगा, तो समाज के विभिन्न अंगों में होने वाले परिवर्तनों, उपलब्धियों, कार्यों, घटनाओं एवं समाज की उपयोगिताएँ, समस्याओं से समाज में रहने वाले लोग परिचित नहीं हो पाएँगे। सामाजिक इतिहास के माध्यम से मानव अनेक प्राचीन युग की खूबियों, उपलब्धियों, कमियों को संजोकर रखता है। इतिहास में कुछ पुरातत्वविद यह मानते हैं कि सिंधु घाटी की समकालीन सभ्यता मेसोपोटामिया के समान हड़प्पाई लोगों में भी एक पुरोहित राजा होता था जो महल में रहता था। लोग उसे पत्थर की मूर्तियों में आकार देकर सम्मान करते थे। संभवतः धार्मिक अनुष्ठान उन्हीं के द्वारा किया या कराया जाता था। कुछ पुरातत्वविद इस मत के हैं कि हड़प्पाई समाज में शासक नहीं थे तथा सभी की सामाजिक स्थिति समान थी। समाजशास्त्रियों ने इस परिवर्तन की गति का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। सामाजिक इतिहास का अध्ययन ऐतिहासिक समझ विकसित करने में मदद कर सकता है। सामाजिक इतिहास में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। समाज का दर्पण है सामाजिक इतिहास। सामाजिक इतिहास के माध्यम से मानव अपने प्राचीन युग की खूबियों, उपलब्धियों, कमियों को संजोकर रखता है। जो कुछ समाज में घटित होता है, उसकी भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अपने पूर्वजों के कार्यकलापों, उनके सामाजिक जीवनशैली, समाज में होने वाले सांस्कृतिक क्रियाकलापों, उनके क्रमिक विकास की जानकारी भी हमें सामाजिक इतिहास से मिलती है। यदि सामाजिक इतिहास नहीं होगा तो राजनीतिक तथा आर्थिक इतिहास का महत्व उसके अभाव में कम हो जाएगा, क्योंकि समाज में ही मनुष्य रहते हैं और अपने जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष की प्रक्रिया के कारण ही मनुष्य ने आग और अन्न की खोज की और समाज असभ्यता से सभ्यता की सीमा में पहुँच सका।

महात्मा गांधी की भाषाई दृष्टि

20वीं शताब्दी की अत्यंत प्रभावशाली एवं महान विभूतियों में से एक महात्मा गांधी ने भारतवर्ष को एक राष्ट्र के रूप में विकसित होते देखने के लिए कई स्वप्न देखे थे। उनके स्वप्न, मात्र स्वप्न नहीं थे, बल्कि राष्ट्र की सशक्त संकल्पना की नींव थे। उन्होंने अपने सपनों को यथार्थ के धरातल पर कसा भी था। दृढ़ निश्चयी एवं महान अध्यवसायी गांधीजी ने अपनी सत्य साधना के साथ-साथ जहाँ एक ओर समाज सुधार हेतु कई कार्य किए, वहीं गरीबी उन्मूलन तथा विदेशी परतंत्रता से मुक्ति हेतु स्वाधीनता

डॉ. साकेत सहाय

संप्रति : राष्ट्रीयकृत बैंक में वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा) के रूप में कार्यरत।

भारतीय वायु सेना एवं बैंकिंग उद्योग में कार्य करते हुए 30 से अधिक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय सेमिनारों में अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किए हैं। इनकी 100 से अधिक रचनाएँ राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी पुस्तक 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया : भाषिक संस्कार एवं संस्कृति' प्रकाशित हुई है।

सम्मान : वर्ष 2018 में हिंदी में उल्लेखनीय लेखन के लिए भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा 'राजभाषा गौरव पुरस्कार' से सम्मानित। भारत उत्थान न्यास द्वारा शिक्षा एवं साहित्य में सम्मान।

संपर्क : मो.– 8800556043

ईमेल– hindisewi@gmail.com

आंदोलन को रीढ़ प्रदान की तथा राष्ट्रीय राजनीति का मार्ग प्रशस्त किया। उनके विचारों ने न केवल भारतीय स्वाधीनता आंदोलन बल्कि संपूर्ण अफ्रीका, यूरोप एवं एशियाई राष्ट्रों तक को प्रभावित किया। उन्होंने राष्ट्र की मजबूती हेतु भाषा, संस्कृति, मानव विकास, उद्योग, बुनियादी शिक्षा संबंधित व्यावहारिक संकल्पनाएँ प्रस्तुत कीं। उनके बारे में गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा था, "गांधीजी एक किताबी सत्य नहीं, एक जीवित सत्य हैं। एक ऐसा सत्य, जो देश के पीड़ित, वंचितों की कुटिया के द्वार खटखटाता है, जिसकी वेशभूषा ठीक वैसी है जैसी कि खुद उनकी और जो खुद उन्हीं की, देश के गरीबों, पीड़ितों एवं वंचितों की भाषा में उनसे बात करता है।"

देश के विकास में राष्ट्रभाषा और लिपि के योगदान एवं महत्व को लेकर वे बेहद सतर्क थे। भाषा को लेकर उनके विचार हमें यत्र-तत्र विपुल मात्रा में प्राप्त होते हैं। यंग इंडिया (27 अगस्त, 1925), में वे लिखते है–"अगर हमें एक राष्ट्र होने का अपना दावा सिद्ध करना है तो हमारी अनेक बातें एक-सी होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न धर्म और संप्रदायों को एक सूत्र में बाँधने वाली हमारी त्रुटियाँ और बाधाएँ भी एक-सी हैं। मैं यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि हमारी पोशाक के लिए एक ही तरह का कपड़ा न केवल वांछनीय है, बल्कि आवश्यक भी है। हमें एक सामान्य भाषा की भी जरूरत है, देशी भाषाओं की जगह पर नहीं, परंतु उसके सिवा इस बात में साधारण सहमति है कि यह माध्यम हिंदुस्तानी ही होना चाहिए जो हिंदी और उर्दू के मेल से बने, जिसमें न तो संस्कृत की और न फारसी या अरबी की ही भरमार हो। हमारे रास्ते की सबसे बड़ी रुकावट हमारी देशी भाषाओं की कई लिपियाँ हैं। अगर एक सामान्य लिपि अपनाना संभव हो तो एक सामान्य भाषा का हमारा जो स्वप्न है अभी तो वह स्वप्न ही है उसे पूरा करने के मार्ग की एक बड़ी बाधा दूर हो जाएगी।"

महात्मा गांधी भिन्न-भिन्न लिपियों को ज्ञान की प्राप्ति में बाधक मानते थे। वे अलग-अलग लिपियों को भारतीय ज्ञान के प्रसार में बाधक मानते थे। इस हेतु गांधीजी देवनागरी को सर्व-सामान्य लिपि मानते थे।

क्योंकि जो भारतीय संस्कृत से उत्पन्न भाषाएँ और दक्षिण की भाषाएँ बोलते हैं, उन सबके लिए एक सामान्य लिपि एक आदर्श स्थिति होगी। गांधीजी राष्ट्रभाषा के निम्न लक्षण निर्धारित करते हैं–

1. वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए आसान होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक कामकाज होना चाहिए।
3. उस भाषा को भारत के ज्यादातर लोग बोलते हों।
4. वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान हो।
5. उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या कुछ समय तक रहने वाली स्थिति पर जोर न दिया जाए।

इन पाँचों लक्षणों द्वारा हम सहज ही अंदाजा लगा सकते हैं कि हमारे देश के संदर्भ में यह कौन-सी भाषा हो सकती है। गांधीजी मानते थे कि भारत में हिंदी को छोड़कर इतने गुण किसी भी भाषा में नहीं हैं। वे मानते थे कि देश के किसी भी कोने में जाएँ, हिंदी में आसानी से काम चल जाता है। चाहे मद्रास हो या कोई और क्षेत्र। गांधीजी लिखते हैं, "हिंदी पहले ही हमारी राष्ट्रभाषा बन चुकी है। हमने वर्षों पहले उसका राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग किया है। उर्दू भी हिंदी की इस शक्ति से पैदा हुई है। मुसलमान बादशाह भारत में फारसी-अरबी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सके। उन्होंने हिंदी के व्याकरण को मानकर उर्दू लिपि काम में ली और फारसी शब्दों का ज्यादा उपयोग किया, परंतु आम लोगों के साथ अपना व्यवहार वे विदेशी भाषा के द्वारा नहीं चला सके।"

गांधीजी ने वर्ष 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटकर देश को समझने की दृष्टि से की गई अपनी विपुल-यात्रा क्रम में यह जान लिया कि हिंदी ही इस देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है। वे हिंदुस्तानी को अपनाने के पक्ष में थे जिसे वह 'भाषा का मध्य मार्ग' कहते थे। गांधीजी यह भी चाहते थे कि हिंदी जानने वाले दक्षिण भारत की कोई एक भाषा जरूर जानें। इसी तरह दक्षिण के लोग भी हिंदुस्तानी सीखें, उनका यह आग्रह था। लिपि के संबंध में गांधीजी का देवनागरी लिपि के प्रति झुकाव था। गांधीजी देवनागरी को सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि मानते थे। रोमन लिपि में हिंदुस्तानी लिखने की कल्पना से ही वे भयभीत हो जाते थे।

भाषा के प्रसंग में 'अंग्रेजी बनाम भारतीय भाषाओं के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न' के संदर्भ में गांधीजी की स्पष्ट नीति थी कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को नहीं बनाया जा सकता। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। इस संबंध में उन्होंने 'मेरा अपना अनुभव' (हरिजन-नौ जुलाई, 1938) में अपने विचार तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किए हैं। प्रशासनिक स्तर पर भाषा को लेकर उनकी राय बेहद स्पष्ट थी कि केंद्र का कार्य हिंदी में तथा प्रादेशिक सरकारों और केंद्र का पत्र-व्यवहार भी हिंदी माध्यम से होना चाहिए।

गांधीजी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रति बेहद आग्रही थे। उन्होंने साफ शब्दों में हिंदी को राष्ट्रभाषा कहा। गांधीजी का कथन था, "जिस देश की कोई भाषा नहीं, वह राष्ट्र गूँगा है।" वे कहते थे कि देश के 33 करोड़ लोग हिंदुस्तानी या हिंदी जानते हैं और वही भाषा राष्ट्रभाषा कहलाने की अधिकारिणी है।

इस प्रकार शिक्षा का माध्यम, प्रशासन का माध्यम, प्रांतीय सरकार व केंद्रीय सरकार के कामकाज एवं अंतरराष्ट्रीय पत्र-व्यवहार किसी में भी वे अंग्रेजी के पक्षधर नहीं थे। विदेशी भाषा का ग्रहण, चाहे वह कितनी भी समुन्नत क्यों न हो, वे गुलामी का प्रतीक मानते थे। गांधीजी यह भी मानते थे कि किसी विदेशी भाषा के माध्यम से व्यक्ति की क्षमता का पूर्ण विकास संभव नहीं है। कोई भी विदेशी भाषा जनभाषा नहीं बन सकती है। अतः किसी देश पर थोपना वे अन्याय समझते थे। 'यंग इंडिया' में 22 जनवरी, 1920 को गांधीजी ने मद्रास के नाम से एक अपील निकाली थी, जिसके कुछ अंश दृष्टव्य हैं–"सन् 1915 से मैं एक के सिवा कांग्रेस की सभी बैठकों में शामिल हुआ हूँ। उसके कार-बार को अंग्रेजी के बदले हिंदुस्तानी में चलाने की उपयोगिता के विचार से मैंने उसका खासतौर से अभ्यास किया है। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हजारों प्रेक्षकों से इसकी चर्चा की है। सभी लोक सेवकों की अपेक्षा मैं शायद सारे देश में ज्यादा घूमा-फिरा हूँ और पढ़े-लिखों व अनपढ़ों को मिलाकर सबसे ज्यादा लोगों से मिला हूँ और मैं सोच-समझकर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र का कार-बार चलाने के लिए या विचार-विनिमय के लिए हिंदुस्तानी को छोड़कर दूसरी कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके। साथ ही, व्यापक अनुभव के आधार पर मेरी यह पक्की राय बनी है कि पिछले दो सालों को छोड़कर बाकी सब सालों में कांग्रेस का करीब-करीब सारा ही काम अंग्रेजी में चलाने से राष्ट्र को बहुत नुकसान उठाना पड़ा है।"

इंदौर में हिंदी सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में अपने ऐतिहासिक अध्यक्षीय भाषण में महात्मा गांधी ने कहा था, "भाषा माता के समान

है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए वह हम लोगों में नहीं है...50 वर्ष से हम अंग्रेजी के मोह में फँसे हैं, हमारी प्रज्ञा अज्ञान में डूब रही है। हमें ऐसा उपाय करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रांतीय सभाओं में और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में एक भी अंग्रेजी का शब्द सुनाई न पड़े।"

जब राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक सम्मेलन के दौरान हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाए जाने का पहली बार सार्वजनिक आह्वान किया, तब उनके दिल से निकले बोल की गूँज स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे बहुभाषी देश में दूर-दूर तक सुनाई दी थी। इंदौर के सार्वजनिक उद्बोधन में महात्मा गांधी ने पहली बार आह्वान किया था कि हिंदी को ही भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए। 'जब बापू ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की अपील की, तब देश गुलामी के बंधनों से आजाद होने के लिए संघर्ष कर रहा था। उस दौर में इस मार्मिक अपील ने देशवासियों के दिल को छू लिया था और उनके भीतर मातृभूमि की स्वतंत्रता की साझी भावना बलवती हो गई थी।'

> **"राजनीतिक कारणों से कई बार हिंदी को असहज स्थिति का सामना करना पड़ता है। इसीलिए कई बार यह कहना पड़ता है कि भले ही हमने गांधीजी को राष्ट्रपिता घोषित किया। पर जब हिंदी को उनके ही देश में दोयम दर्जे का कद दिया जाता है तो लगता है कि गांधीजी की आत्मा कराह रही होगी।"**

महात्मा गांधी ने श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति में आयोजित आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन के दौरान इंदौर से पाँच 'हिंदी दूतों' को देश के उन राज्यों में भेजा था, जहाँ उस वक्त इस भाषा का ज्यादा प्रचलन नहीं था। 'हिंदी दूतों' में बापू के सबसे छोटे बेटे देवदास गांधी शामिल थे। हिंदी के प्रचार-प्रसार की इस अनोखी और ऐतिहासिक मुहिम के तहत 'हिंदी दूतों' को सबसे पहले तत्कालीन मद्रास प्रांत के लिए रवाना किया गया था।

'हमारी अदालतों में राष्ट्रीय भाषा और प्रांतीय भाषाओं का जरूर प्रचार होना चाहिए।' 'बापू' के अध्यक्षीय उद्बोधन के आखिरी शब्द जिनसे उनके दिल में बसी हिंदी जैसे खुद बोल उठी थी, 'मेरा नम्र, लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी को राष्ट्रीय दर्जा और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज की सब बातें निरर्थक हैं।'

गांधीजी मानते थे कि यदि हिंदी राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। साहित्य की दृष्टि से भी हिंदी भाषा का स्थान विचारणीय है। गांधीजी ने स्पष्टतः कहा था, "अंग्रेजी राष्ट्रीय भाषा नहीं हो सकती। पर वे अंग्रेजी भाषा से द्वेष नहीं रखते थे।"

वर्तमान भाषाई परिदृश्य में गांधीजी की भाषा-नीति उतनी ही प्रासंगिक और अनुकरणीय है जितनी प्रतिष्ठित होने के पूर्व थी। इंदौर के सम्मेलन में उन्होंने जिन बिंदुओं की चर्चा की थी वे आज भी महत्वपूर्ण हैं। यथा-हिंदी से प्रतिस्पर्धा करने वाली दूसरी कोई भाषा नहीं है। हिंदी भाषी जनता की संख्या अधिक है, अहिंदी भाषियों में हिंदी जानने वाले अधिक हैं और भारत के बाहर बसे भारतवासियों में भी हिंदी का ही सर्वाधिक प्रचार है। आज भी गांधीजी द्वारा 15 अक्तूबर, 1917 को भागलपुर में दिए गए भाषण को स्मरण करना प्रत्येक भारतीय के लिए गर्व का विषय होना चाहिए—'यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा सिद्धांत यह हो कि अंग्रेजी के बल पर हम अपने ऊँचे ख़्यालात बना सकेंगे तो हम हमेशा गुलाम बने रहेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं।'

गांधीजी के लिए स्वराज का अर्थ केवल राजनैतिक सत्ता का परिवर्तन नहीं था, बल्कि विदेशी सत्ता हटाकर देश में ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था, जिसमें छोटे-बड़े, ऊँच-नीच तथा अमीर-गरीब की खाइयाँ न रहें और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ विकास की पूर्ण सुविधाएँ भी प्राप्त हों। आज हमारे देश को स्वतंत्र हुए 70 वर्ष से अधिक हो गए, लेकिन हम अपने राष्ट्रीय लक्ष्य से कोसों दूर हैं। स्वाधीनता के बाद से हमारे देश में, राष्ट्रभाषा हिंदी के बारे में कुतर्कों के जाल लगातार फैलाए जाते रहे हैं। उन्हीं का परिणाम है कि हिंदी आज तक अपना अनिवार्य ऐतिहासिक स्थान नहीं पा सकी है। मुझे लगता है कि यह किसी महत्वपूर्ण स्वाधीन राष्ट्र के मामले में अनूठा है। जहाँ की उसकी स्वयं की राष्ट्रभाषा इतने लंबे समय तक अपदस्थ रही। राजनीतिक कारणों से कई बार हिंदी को असहज स्थिति का सामना करना पड़ता है। इसीलिए कई बार यह कहना पड़ता है कि भले ही हमने गांधीजी को राष्ट्रपिता घोषित किया। पर जब हिंदी को उनके ही देश में दोयम दर्जे का कद दिया जाता है तो लगता है कि गांधीजी की आत्मा कराह रही होगी।

यह स्थिति क्यों पैदा हुई, इसके क्या कारण रहे हैं, यह एक अलग विषय है। परंतु यह कहा जा सकता है कि हिंदी सब की है। आज हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित करने के बारे में बात करना कुछ क्षेत्रों में अशांति उत्पन्न करने की स्थिति पैदा करती है। कथित उदारता के नाम पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे नेतृत्वकर्ताओं ने भाषा के मामले में भयानक चूक की। भारत के इतिहास में कई बार उदारता के नाम पर हमने सबक सीखे हैं। मामूली छूट के सहारे ही ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपना जाल फैलाया था और बाद में समस्त देशी राज्यों को एक-एक कर हड़पते हुए संपूर्ण संप्रभुता हासिल कर ली थी। अंग्रेजी का भी यही चरित्र है। अंग्रेजी की उपस्थिति की वजह से कोई भी देशी भाषा सशक्तता के साथ पनप नहीं सकी।

ऐसे में यह जरूरी है कि हम गांधीजी के सपनों के भारत को फलीभूत करें तथा अपनी हिंदी को वह सम्मान दिलाएँ, जिसकी वह अधिकारी है।

पुष्पा भारती : जो भी लिखा, हमेशा मूल ही लिखा

हिंदी साहित्य के साथ-साथ पत्रकारिता जगत में कई महिलाओं ने सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है। उसी कड़ी में एक महत्वपूर्ण नाम है पुष्पा भारती का। इनका जन्म 1935 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद में हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में एम.ए. पुष्पा जी ने कुछ समय तक कोलकाता में अध्यापन भी किया। धर्मवीर भारती से विवाह के बाद मुंबई आईं और 'मुक्ता राजे' के छद्म नाम से लेखन की शुरुआत की। पुष्पा जी ने विश्व प्रसिद्ध लेखकों और कलाकारों के निजी प्रेम प्रसंगों पर आधारित उनकी निजी प्रेम गाथाएँ लिखीं। वेंकटरमन, राजीव गांधी, सोनिया गांधी, अमिताभ बच्चन और सचिन तेंदुलकर समेत तमाम विशिष्ट व्यक्तियों के साक्षात्कार लिए। राजस्थान शिक्षा विभाग के आग्रह पर 'एक दुनिया बच्चों की' का संपादन किया। लंबे समय तक बालचित्र निर्माण संस्था (सी.एफ.एस.आई.) से जुड़ी रहीं। इनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं–'आधुनिक साहित्य बोध', 'रोमांचक सत्य कथाएँ', 'शुभागत', 'रोचक राजनीति', 'हिंदी के तीन उपन्यास', 'ढाई आखर प्रेम के', 'अमिताभ आख्यान', 'सरस संवाद' और 'सफर सुहाने'। पुष्पा जी को रमा पुरस्कार, स्वजन सम्मान, भारती गौरव पुरस्कार, आशीर्वाद सारस्वत सम्मान और उत्तर प्रदेश हिंदी शिरोमणि सम्मान से विभूषित भी किया गया है।

दिवसों का प्रचलन हमारे यहाँ काफी हो गया है। हमारे समाज का एक तबका इन दिवसों पर इतना मोहित है कि इन्हें उत्सवों की तरह मनाता है। चाहे वह महिला दिवस हो या हिंदी दिवस। इन दिवसों के बारे में आप क्या सोचती हैं?

दीप्ति अंगरीश

शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से परास्नातक, टाइम्स स्कूल ऑफ जर्नलिज्म से पत्रकारिता।

संप्रति : वर्ष 2005 में पत्रकारिता की शुरुआत। विभिन्न प्रतिष्ठित समाचार पत्रों एवं समाचार चैनलों में कार्य का अनुभव।

लेखन : कई वर्षों से देश के विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा, कहानी लेखन आदि का कार्य।

महिला दिवस ही क्या अब तो हर दिन रस्मी दिन बनकर रह गए हैं। आप हिंदी दिवस को ही लें। मैं हमेशा कहा करती हूँ कि हिंदी दिवस अब हिंदी का श्राद्ध दिन होता है। क्योंकि यह दिन श्राद्ध पक्ष में आता है। और तो और हिंदी अब मर गई है। इस दिन के लिए सरकार हर दफ्तर, हर सोसायटी को पैसा देती है। उन्हें हिंदी के नाम पर पैसा मिल जाता है। थोड़ा-बहुत हिंदी दिवस के नाम पर खर्च होता है। लेकिन इसका क्या औचित्य। असल में करने वाले और हिंदी का महिमा गान सुनने वाले का कोई मतलब होता है। सिर्फ खानापूर्ति हो जाती है। इसी तरह महिला दिवस भी है। महिला दिवस क्या होता है। महिला, पुरुष में क्या फर्क है। महिला पत्रकार है या पुरुष पत्रकार दोनों में कोई फर्क नहीं है। एक ही बात है। आजकल महिलाओं के लिए महिला दिवस इतना चल निकला है कि महिलाओं के लिए ये करेंगे, वो करेंगे। महिलाएँ पीछे छूट गई हैं। ये सब चीजें बेमानी हो गई हैं। इस दिन की शुरुआत बहुत हास्यास्पद तरीके से की गई थी। महिलाओं ने जुलूस निकाले। महिलाओं को कोई विचार नहीं था कि महिला दिवस क्यों मनाएँ। इसे मनाने से क्या फायदा होगा। आज भी यही स्थिति है महिला दिवस के नाम पर दो-चार भाषण हो जाते हैं। मेरे लिए यह दिन एक रस्मी दिन है। मैं तो इस दिन पर कोई भाषण नहीं देती। मेरे हिसाब से महिला-महिला नहीं करो और स्त्री-पुरुष में समानता की बात मत करो। या तो ऐसा बँटवारा हो कि जो महिला अपने पैर पर खड़ी है, अपना और परिवार का भरण-पोषण कर सकती है, उसकी पुरुष से बराबरी करो। महिलाओं तुम पुरुषों से ऊँची हो। तुम ही महिला-पुरुष को जन्म देती हो। तुम्हारी बराबरी पुरुष क्या करेगा। नारी तुम श्रद्धा हो। हमारे यहाँ इस पर कितना काम हुआ है।

आपने साहित्य और पत्रकारिकता को करीब से देखा है। इन दिनों महिला विमर्श का बोलबाला है। इस पर क्या कहेंगी?

मेरे दिमाग में महिला दिवस का कोई महत्व नहीं है। यह एक गैर-जरूरी चीज है। विमर्श नाम पर हमारे यहाँ की महिलाएँ खूब लेखन

करती हैं। आप उन्हें पढ़िए उनमें कितने विरोधाभास हैं। जो औरतें विमर्श-विमर्श चिल्लाती हैं, उनका स्वयं का जीवन देखिए। उनके जीवन को देखिए कितना अलग होता है। वो स्वयं विमर्श को समझ नहीं पातीं। मेरे हिसाब से महिला-विमर्श कोई जरूरी नहीं है। महिला दिवस में से विमर्श अलग कर देना चाहिए। महिला दिवस को महिला की गरिमा के साथ निभाओ। साल के हर दिन महिला होती है। पुरुष-विमर्श की जरूरत है।

अमूमन पढ़ने के प्रति रुझान घर या संगत से आता है। क्या आप में साहित्य के संस्कार बीज का रोपण का भी यही कारण रहा? आप कब से लिख रही हैं?

मैं स्कूल-कॉलेज में खूब लिखती थी वहाँ की पत्रिकाओं में। हमारे जमाने में स्वरचित काव्य पाठ हुआ करते थे। मैं उनमें हिस्सा लेती थी। उस वक्त साहित्य हमारे साथ-साथ चलता था। असल में घर में ही साहित्य के बीज मिल गए थे। मेरे पिताजी बहुत विद्वान थे। उन्होंने हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत में एम.ए. किया था। उनका हिंदी से अधिक प्रेम था। पिताजी अध्यापक थे। छुटपन से हमें साहित्य का रस आता था। मेरे पिताजी ने सिखाया था कि साहित्य का असली रस लेना है तो शब्दों के अर्थ मत जानो, शब्द का मर्म जानो। फिर साहित्य का रस आएगा। मैं मुरादाबाद में पैदा हुई हूँ। मैं सुभाष नेशनल कॉलेज, उन्नाव के पुस्तकालय से पुस्तक ले जाती और तीसरे दिन पढ़कर वापस कर देती। पिताजी ने सिखाया था कि डिबेट जीतने के लिए विषय के हित में नहीं बोलो।

सरकार 'बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ' की नीति जनता अपनाए इसके लिए पुरजोर कोशिश करती है। आखिर समृद्ध भारत की नींव हैं बेटियाँ। बेटियाँ पढ़ी-लिखी होंगी, तो देश तरक्की करेगा। आपके जमाने में लड़कियाँ क्या पढ़ती थीं? उस समय क्या स्थिति थी?

पढ़ती थीं, लेकिन कम। मेरे कॉलेज में बहुत कम लड़कियाँ थीं। बड़ा विचित्र लगता था। क्लास में ऐसी सीट पर बैठती थी जहाँ टीचर का चेहरा सामने की तरफ हो। जब मैं इलाहाबाद गई, तब पता चला कि यहाँ लड़कियाँ अलग पढ़ती हैं और लड़के अलग। एम.ए. में लड़कियाँ कम होती थीं तो को-एड कॉलेज में जाते थे। बचपन से ही मेरा दिमाग ट्रेंड कर दिया गया था हिंदी साहित्य का रस लेने को। हिंदी में तो काफी तेज थी, लेकिन अन्य विषयों में उतनी तेज नहीं थी।

धर्मवीर भारती से आपकी मुलाकात कब हुई?

बी.ए. करते हुए जब इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में गई, तो पता चला कि अंग्रेजी बच्चन साहब पढ़ाते हैं। फिराक साहब अंग्रेजी पढ़ाते हैं। और पता चला कि धर्मवीर भारती हिंदी पढ़ाते हैं। ये जानकर हम सहेलियाँ उछल पड़ीं। उस जमाने में धर्मवीर भारती हर विद्यार्थी के लिए महाभारत, रामायण या गीता हो गए थे। चाहे उनकी लिखी 'गुनाहों का देवता' हो या 'अंधा युग'। पता चला कि धर्मवीर भारती ब्वॉयज डिपार्टमेंट को पढ़ाते हैं। यह जानकर काफी उदास हुए। पर उन सभी को देखने का मन हुआ। हम लोग पढ़ाई के घंटे बंक कर के सभी को देखने जाते थे। सब सहेलियों ने पता कर लिया कि कौन कितने बजे आते हैं। बच्चन जी गाड़ी से आते थे। कब आए, कब गए पता ही नहीं चलता था। उस जमाने में लोगों के लिए गुनाहों के देवता महाभारत, रामायण थी। धर्मवीर भारती साइकिल से कॉलेज आते थे और स्टाफ रूम की दीवार के साथ साइकिल पार्क करके ताला लगाते थे। ऐसे में हमें काफी समय मिल गया उन्हें देखने को। धर्मवीर भारती को देखकर हम ज्यादा प्रभावित नहीं हुए थे। क्योंकि काफी दुबले-पतले, लंबे, साधारण चेहरा। एक दिन देखा तो हैरान रह गए, जब वो स्टाफ रूम से क्लास रूम में जा रहे थे। तब उनकी जो चाल थी, हम तो फिदा हो गए। चाल से ही वो इनसान विद्वान लग रहा था।

बच्चन जी से कैसे मुखातिब हुईं?

हमारे कॉलेज में घोषित हुआ कि स्वरचित काव्य पाठ आयोजित होगा। सबको खुद कविताएँ लिखनी हैं प्रतियोगिता के लिए। प्रतियोगिता की अध्यक्षता करेंगे बच्चन जी। खुश हो गए कि हमें बच्चन जी को देखने का मौका मिलेगा। पढ़ते तो हम बहुत थे, लेकिन लिखा कभी नहीं था। मैंने ठाना कि लिखूँगी। मैं पुस्तकालय से पुस्तकें लाई और सबको पढ़ा और खँगाला। कुछ पंक्तियाँ महादेवी वर्मा जी, कुछ पंक्तियाँ पंत जी, कुछ पंक्तियाँ निराला जी की लीं और यहाँ-वहाँ भाव चोरी किए और सभी को मिला-जुलाकर नई कविता बना दी। तीन निर्णायकों के निर्णय से मैं प्रथम आई। मैं उछल गई। उसके बाद अध्यक्षीय भाषण देने के लिए बच्चन जी खड़े हुए और बच्चन जी ने कहा कि आप सभी में खूब प्रतिभा है और कहा कि जिंदगी में उधार लिए हुई चीजें लंबा साथ नहीं देती हैं। और साथ ही मुझे देखकर कहा कि आप जो जिएँ, वही लिखें। मैं समझ गई कि मेरी चोरी उन्होंने पकड़ ली है। मैंने वहीं से कानों को हाथ लगाए और क्षमा माँगी। उस दिन मैंने निश्चय किया कि कविता कभी नहीं लिखूँगी और हमेशा मूल ही लिखूँगी।

समीक्षक : **राजीव श्रीवास्तव**

लेखक : **डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 200

मूल्य : रु. 225/-

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर यात्रा के पदचिह्न

डॉ. आंबेडकर के जीवन और संघर्षों की तथ्यात्मक व शोधपरक जानकारी देती यह पुस्तक उनके जीवन की यात्रा के साथ-साथ भारत की जाति-व्यवस्था, भारत का विभाजन और पाकिस्तान बनाने के प्रश्न, शिक्षा का महत्व और सर्वसुलभता और जम्मू-कश्मीर के सवाल पर डॉ. आंबेडकर के विचारों और उनके बौद्ध धर्म अपनाने आदि प्रमुख विषयों को समेटती एक संक्षिप्त वाङ्मय प्रतीत होती है।

अपने समय के सबसे प्रबुद्ध चिंतक डॉ. आंबेडकर ने भारतीय समाज की अनेक परंपरागत धारणाओं को नकारते हुए उनके पीछे छिपे षड्यंत्रों की पोल भी खोली। वे मानते थे कि इतने विशाल भारत पर मुट्ठीभर विदेशी आक्रमणकारी केवल इसलिए सदियों तक राज करते रहे क्योंकि यहाँ जाति-व्यवस्था के कारण देश की आबादी का बहुत बड़ा वर्ग हथियार उठाने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। इसलिए वे भारत में एक जाति-विहीन समाज का सपना देखते थे और उसके लिए जीवनभर संघर्ष भी करते रहे। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आंबेडकर का कद गांधी, नेहरू और पटेल के समकक्ष था, लेकिन दुर्भाग्य से उन्हें केवल दलितों और पिछड़ों का प्रतिनिधि ही समझा गया। जिस प्रकार से भारत की भौगोलिक एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने में सरदार पटेल की सबसे अहम भूमिका थी। ठीक उसी प्रकार से भारतीय समाज, विशेषकर हिंदू समाज की जातीय एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने में आंबेडकर की सबसे अहम भूमिका थी।

बचपन में किस प्रकार से भीषण गरीबी, अभावों और जाति-पाँति के तानों को झेलते हुए भी पढ़ाई में अव्वल रहने वाले आंबेडकर की प्रतिभा को पहचान कर बड़ौदा नरेश सयाजी राव गायकवाड़ ने उन्हें 1908 में एल्फिस्टन कॉलेज में दाखिला दिलाया था। बी.ए. करने के बाद उन्हें आगे उच्च शिक्षा के लिए बड़ौदा नरेश ने ही 1913 में कोलंबिया विश्वविद्यालय भेजा, लेकिन कॉलेज के हॉस्टल में गोमांस पकने के कारण उन्होंने छात्रावास छोड़ दिया था। 1915 में उन्होंने अर्थशास्त्र में एम.ए. किया, जिसमें उनका शोध विषय 'ईस्ट इंडिया कंपनी का वित्त और प्रशासन' था। संभवतः पहली बार किसी ने उस समय दस्तावेजों के आधार पर कंपनी के द्वारा भारत में की गई लूट का कच्चा-चिट्ठा प्रस्तुत किया था। इसके बाद आंबेडकर ने लंदन स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिकल साइंस से अर्थशास्त्र में एम.एससी. किया। बीच में उन्हें बड़ौदा नरेश से मिलने वाला वजीफा बंद हो जाने के कारण 1917 में भारत लौटना पड़ा। चार साल तक कड़ी मेहनत करके कुछ धन जोड़कर 1921 में वह फिर पढ़ाई पूरी करने लंदन गए।

1924 में डॉ. आंबेडकर ने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की और हिंदू समाज में अछूतों के कल्याण और विकास हेतु कार्य किया। उनका मानना था कि हिंदू समाज का उत्थान तभी हो सकता है जब अस्पृश्यों की समस्याओं का अंत हो जाए। इन्हीं संघर्षों के बीच आंबेडकर को अपने तीन पुत्रों और एक पुत्री की मृत्यु का दुख भी झेलना पड़ा। जनवरी 1926 में आंबेडकर मुंबई विधान परिषद में मनोनीत हुए और महार आंदोलन का नेतृत्व करते हुए कोलाबा स्थित भवदार तालाब का पानी पिया जिसे उस समय केवल ऊँची जाति के लोग ही इस्तेमाल कर सकते थे। इसके बाद महारों और सवर्णों के बीच संघर्ष भी हुआ। आंबेडकर केवल अछूतों और पिछड़ों के पक्ष में नहीं थे। 1929 में उन्होंने भारत डोमिनियन के लिए प्रस्तावित संविधान तैयार करने वाली मोतीलाल नेहरू समिति की रपट में मुसलमानों को दी जाने वाली सुविधाओं, और अछूतों व पिछड़ों की पूरी तरह से अनदेखी करने का अपने अख़बार 'बहिष्कृत भारत' में जमकर विरोध किया।

1930-31 में लंदन में हुई गोलमेज़ परिषद में ब्रिटिश सरकार द्वारा दलितों/अनुसूचितों के प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित आंबेडकर ने दुनिया के सामने भारत में अस्पृश्यों की समस्या को जाहिर किया और ब्रिटिशों को स्पष्ट किया कि भारत में वही संविधान मान्य होगा जिसे भारत के लोग स्वीकार करेंगे। 1931 में आयोजित दूसरी गोलमेज़ परिषद में भाग लेने आंबेडकर फिर लंदन गए और वहाँ ब्रिटिश सरकार ने उनकी यह माँग स्वीकार कर ली कि भारत में मुसलमानों और सिखों की तर्ज़ पर दलित समाज को भी पृथक निर्वाचन मंडल दिया जाए।

आंबेडकर ने 1935 में स्वतंत्र मजदूर पार्टी की स्थापना भी की थी और जागीरदारी प्रथा को मिटाने की माँग करते हुए श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए कड़े कानून बनाने की वकालत भी की थी,

जिसके कारण उनका कम्युनिस्टों से विवाद शुरू हो गया जो उन पर श्रमिकों के वोट बँटने और उनकी एकता में फूट डालने का आरोप लगा रहे थे।

आंबेडकर के जीवन मंथन से जो विष निकल रहा था, उसे वह स्वयं ही पी भी रहे थे और यही कारण है कि अपने अंतिम दिनों में, 14 अक्तूबर, 1956 को उन्होंने दशहरे के दिन नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। डॉ. आंबेडकर के जीवन और कार्यों पर लिखी गई यह पुस्तक आम पाठकों के साथ-साथ भारत के निकट ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों के शोधार्थिओं के लिए भी एक 'मस्ट रीड' है।

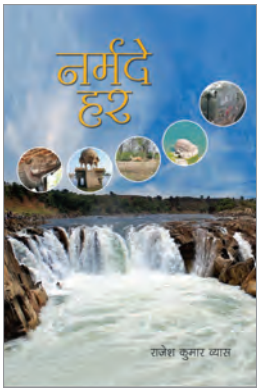

समीक्षक : **दीप्ति अंगरीश**

लेखक : **राजेश कुमार व्यास**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 130

मूल्य : रु. 190/-

नर्मदे हर

कई सुधीजन इस बात को पूरी शिद्दत के साथ कहते हैं कि किसी को समझना हो तो यात्रा करें। यह वैयक्तिक, सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियों पर लागू होता है। असल में, यात्राएँ कई किस्म की होती हैं। कभी मन से, कभी तन से, कभी सपनों में, कभी सुनकर, कभी देखकर और कभी पढ़कर। लेकिन हर यात्रा सुखद होती। कई यादें, कई उम्मीदें, कई सीखें, कई महत्वाकांक्षाएँ अपने में समेटी हुई होती हैं। या यूँ कहें कि यात्रा एनर्जी बूस्टर होती है। ऐसा नहीं है कि हर यात्रा सकारात्मकता से लबरेज हो। कई दफा यात्रा में घटित परेशानियाँ एक खौफ की बंद गठरी बन मानस-पटल में अमिट स्थान लेती हैं, जो भविष्य में यात्रा करने की हामी नहीं भरने देतीं। ऐसे में यात्रा स्ट्रेस बूस्टर नहीं 'बस्टर' बनती है। यात्रा का नकारात्मक पहलू दरकिनार रखें, तो यात्रा कहीं की भी हो, खुशहाली से लबरेज होती है। बहुत कुछ सिखाती है। जिंदगी के हर मोड़ का डटकर मुकाबला करने में सक्षम बनाती है। यहाँ तक कि ज्ञान और जिज्ञासा में इजाफा करती है, इतिहास से लेकर संस्कृति तक।

यात्रा वृत्तांत 'नर्मदे हर' विशेष उल्लेखनीय है कि इसमें भ्रमण की भारतीय संस्कृति को लेखक ने गहराई से जिया है। जब आप आत्मानुभूति को अपना शब्द देते हैं, तो वह अप्रतिम होता है। नर्मदा नदी के उद्‍गम स्थल अमरकंटक के आध्यात्मिक परिवेश और नैसर्गिक सौंदर्य को लेखक ने शब्दों के जिस प्रवाह और खूबसूरती के साथ से पेश किया है, उसमें सहज ही बहते हुए पूरी किताब पढ़ी जाती है। असल में, यह यात्रा वृत्तांत स्थानों का विवरण ही नहीं है, बल्कि वहाँ की संस्कृति, परिवेश और इतिहास से जुड़े आख्यानों के साथ लेखक के अंतर्मन की संवेदनाओं का उजास है।

दरअसल, कई बार घूमने का मन तो बहुत करता है, पर विविध प्रकार की अड़चनें घुमक्कड़ी नहीं बनने देतीं। ऐसे में यात्रा वृत्तांत से बेहतर घुमक्कड़ी का सुहाना सफर कोई नहीं करवा सकता। भले ही भौतिक रूप से उक्त स्थान की सैर नहीं की, पर यात्रा वृत्तांत उक्त जगह का हर पहलू व हर दृश्य आँखों के सामने ला देता है।

यात्राएँ अकसर जितनी बाहर होती हैं, उतनी ही भीतर भी होती हैं। भीतर की यात्राएँ बाहर की यात्राओं को समझने में करती हैं। अकसर सामान्य यात्राएँ अलिखित रह जाती हैं, लेकिन किसी भावक या साधक की यात्राएँ इतिहास का दस्तावेज हो जाती हैं।

यात्रा वृत्तांत नर्मदे हर में कुल 31 वृत्तांत हैं। पुस्तक दो भागों में विभाजित है। पुस्तक के पहले भाग में कुल 20 वृत्तांत हैं, जो भारत के विभिन्न राज्यों, शहरों, गाँव, कस्बों का प्रत्यक्षदर्शी विवरण है। दूसरे भाग में नर्मदा के उद्‍गम स्थल और उसके आस-पास के स्थानों में संबंधित 11 अध्याय हैं। पुस्तक का दूसरा भाग काफी खास है। कारण, लेखक ने ऐसी जगहों की चर्चा की है जिसकी जानकारी शायद ही किसी जन को हो। मसलन 'वृत्तांत-प्रकृति का अनूठा छंद' में लेखक ने बताया है कि राजस्थान में ही नहीं छत्तीसगढ़ में भी एक कोटा है, घाटा कस्बे के प्रारंभ से लेकर तीन घंटे के सफर में कोई चाय की दुकान नहीं है, अचानकमार टाइगर रिजर्व इत्यादि। ऐसे कई दुर्लभ जानकारियों और दुर्लभ प्राकृतिक सौंदर्य का अनमोल खजाना है यह वृत्तांत।

इस वृत्तांत की खूबसूरती है भाषा प्रवाह, जो सहजता, सरलता से लबरेज है। या यूँ कहें कि लेखक की भाषा में गुलजार जैसी रवानगी है। वृत्तांत की हर इकाई को पढ़ते हुए लगता है कि लेखक नहीं, पाठक जी रहा है। आँखों के सामने शब्दों से लेखक ने यात्रा संस्मरण की खूबसूरत छवियाँ उकेरी हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि कल-कल बहती नर्मदा की तरह डॉ. राजेश कुमार व्यास की भाषा सरल व गहरे शब्दों से प्रवाहमान है और स्फटिक की भाँति निर्मल, प्रांजल और पारदर्शी। साथ ही क्लिष्ट नहीं। एक आम आदमी भी इसे बिना शब्दकोश की सहायता से पठन नहीं, यात्रा का मस्तीभरा मनन कर सकता है। भाषा की रवानगी ही इस किताब को अनोखी बनाती है। पाठक इस यात्रा वृत्तांत को पढ़ते समय दिल की गहराइयों में भारत भ्रमण करेंगे।

'नर्मदे हर' शीर्षक ने धार्मिक पहलू को उजागर किया है जो बताता है कि लेखक का भारतीय इतिहास, सनातम धर्म एवं संस्कृति से कितना गूढ़ा स्नेह है। शिवपुराण की एक घटना है, जब शिव ने गंगा को आशीर्वाद दिया कि तुम में डुबकी लगाने से समस्त प्राणियों के पाप धुल जाएँगे। इस पर गंगा ने शिव से कौतूहलवश पूछा कि मेरे

पाप कौन धोएगा? सबके पाप धोते-धोते मैं तो मैली हो जाऊँगी। इस शिव का जवाब था 'नर्मदा'। ऐसे नर्मदा को उच्च पदवी का तमगा पहनाकर लेखक ने इस यात्रा वृत्तांत के साथ न्याय किया है। साथ ही, यह भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं सनातन धर्म का युवा पीढ़ी को अनमोल उपहार दिया है।

समीक्षक : **धर्मेन्द्र पंत**

लेखक एवं अनुवादक :

शशांक मोहन बोस

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 98

मूल्य : रु. 95/-

कैंसर

वर्ष 1971 में एक फिल्म आई थी 'आनंद'। उस फिल्म में हास्य कलाकार जॉनी वाकर का एक डायलॉग है, "नहीं काका सब रोग ठीक हो सकते हैं लेकिन कैंसर ठीक नहीं हो सकता।" 'कैंसर' शब्द ही किसी की रूह कँपाने के लिए पर्याप्त होता है। लंबे समय तक यह धारणा नहीं, बल्कि सच्चाई रही कि कैंसर लाइलाज है। लेकिन चिकित्सा विज्ञान ने अब पर्याप्त प्रगति कर ली है और कैंसर की बीमारी का इलाज संभव हो गया है। युवराज सिंह, मनीषा कोइराला, अनुराग बासु, लांस आर्मस्ट्रांग, रॉबर्ट डि नीरो जैसे कई उदाहरण हैं जिन्होंने इस असाध्य माने जाने वाले रोग पर विजय प्राप्त की। इस सबके बावजूद कैंसर लोगों के लिए एक अबूझ पहेली बना हुआ है। कैंसर क्यों होता है? कैसे होता है? इसके क्या लक्षण हैं और इसका क्या इलाज है? ऐसे कई सवाल हैं जिनका जवाब देने में एक शिक्षित व्यक्ति भी खुद को सक्षम नहीं पाता है। लेकिन इन सभी सवालों का जवाब मिलता है कि प्रो. डॉ. शशांक मोहन बोस की पुस्तक 'कैंसर' से।

प्रख्यात सर्जन, रोग विषयक शोध वैज्ञानिक और लोकप्रिय चिकित्सा शिक्षक डॉ. बोस के गूढ़ ज्ञान और व्यापक अनुभवों का निचोड़ है यह पुस्तक, जिसमें उन्होंने हर तरह के कैंसर की सरल शब्दों में व्याख्या करने के साथ-साथ उसके कारणों और उपायों के बारे में भी बताया है। वर्तमान समय में कैंसर एक आम रोग बनता जा रहा है। बदलती जीवनशैली ने कैंसर को पाँव पसारने के लिए भरपूर मौका दिया। यही वजह है कि हमारे देश में भी कैंसर के रोगियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और वैज्ञानिकों के अनुसार भारत में भविष्य में इस रोग के रोगियों की संख्या बढ़ सकती है क्योंकि लोग इस रोग के कारणों से अनभिज्ञ हैं। कैंसर किसी भी उम्र में हो सकता है और किसी भी व्यक्ति को हो सकता है। कहने का तात्पर्य है कि यह ऐसा रोग है जो अमीर, गरीब, युवा या वृद्ध के बीच कोई भेद नहीं करता है। ऐसे में कैंसर को जानना और समझना आज की आवश्यकता बन गई हैं और डॉ. बोस की पुस्तक इस रोग से जुड़े हर सवाल और जिज्ञासा का निदान करती है। समाज को कैंसर जैसी बीमारी के प्रति जागरूक बनाने के लिए यह पुस्तक बेहद उपयोगी हो सकती है।

मसलन महिलाओं में स्तन कैंसर तेजी से बढ़ रहा है। इसका प्रमुख कारण है शादी देर से करने का प्रचलन। एक जमाना था जबकि 18 से 22 साल के बीच लड़की की शादी हो जाती थी और 30 वर्ष तक वह माँ बन जाती थी, लेकिन अब वह 30 साल के बाद माँ बनती है और इससे उसमें स्तन कैंसर की संभावना बढ़ जाती है। महिलाएँ स्तनपान न करवाकर स्तन कैंसर को न्योता देती हैं। विभिन्न तरह के जागरूकता अभियानों से अब आम व्यक्ति भी इससे अवगत हो गया है कि धूम्रपान और शराब कैंसर के कारक हैं, लेकिन रेडिएशन, वातावरण, आपका भोजन तथा सामाजिक-आर्थिक कारक भी कैंसर के कारण हो सकते हैं। कैसे? इसका सटीक और तथ्यपूर्ण जवाब डॉ. बोस सरल शब्दों में देते हैं।

माना जाता है कि कैंसर का शुरुआती चरण में पता नहीं चलता और अगर चल गया तो फिर इसका इलाज संभव है, लेकिन जब कोई भी रोग लगता है तो शरीर उसके पहले से संकेत देने लग जाता है। कैंसर भी ऐसा रोग है जो शुरू में ही संकेत दे देता है कि अब सतर्क हो जाओ। आम आदमी इन संकेतों को नहीं समझ पाता। इसलिए डॉ. बोस की यह पुस्तक बेहद उपयोगी बन जाती है क्योंकि इसको पढ़ने के बाद एक कम शिक्षित व्यक्ति भी अपने शरीर के बदलावों को समझने में सक्षम हो जाएगा। इसलिए टाटा मेमोरियल सेंटर, मुंबई के निदेशक पी. बी. देसाई ने इसे 'आम व्यक्तियों की पुस्तक' कहा है।

डॉ. बोस ने कैंसर का पता लगाने के लिए की जाने वाली जाँच तथा चिकित्सा और उस समय बरती जाने वाली सावधानियों का जिक्र भी अपनी इस पुस्तक में किया है। कैंसर शरीर के किसी भी अंग में और किसी भी समय हो सकता है। इसके कई प्रकार होते हैं, जैसे—चमड़ी का कैंसर, मुँह का कैंसर, पाचन क्षेत्र, फेफड़े, स्तन, मूत्र क्षेत्र, जननांग क्षेत्र, मांसपेशियों, हड्डी आदि। पोस्टग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च, चंडीगढ़ में सीनियर प्रोफेसर और सर्जरी विभाग के अध्यक्ष रहे डॉ. बोस ने इनमें से हर तरह के कैंसर को अच्छी तरह से समझाने का प्रयास किया है। तस्वीरों और रेखाचित्रों के कारण किसी आम व्यक्ति के लिए भी इसे समझना आसान हो जाएगा।

तेजी से बदलती सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों ने अगर इनसान को कुछ सुख-सुविधाएँ दी हैं तो उसके कुछ नकारात्मक पक्ष भी रहे हैं। कैंसर भी इनमें से एक है। कहा जाता है कि बचाव, सावधानी और समय पर जानकारी सबसे उत्तम उपाय होता है और 'कैंसर' नामक यह पुस्तक इस लिहाज से बेहद उपयोगी है।

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **बापचंद्र महंत**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 338

मूल्य : रु. 365/-

असम के बरगीत

असमिया और हिंदी के बीच एक सेतु निर्माण का कार्य करने वाले बापचंद्र महंत द्वारा लिखित पुस्तक 'असम के बरगीत' में भक्ति परंपरा के महान दार्शनिक व कवि श्रीशंकरदेव के कृतित्व और व्यक्तित्व पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। श्रीशंकर देव ने 'बरगीतों' के द्वारा उस समय के हिंदुओं और सीमांत जनजातियों व उपजातियों की आध्यात्मिक भावनाओं को, राधा-कृष्ण के भक्तिपरक गीतों के माध्यम से एक सूत्र में पिरोने का काम किया है। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. प्रभाकर माचवे ने 1982 में ही इस पुस्तक की भूमिका (दो शब्द) लिख दी थी। इस पुस्तक की उपादेयता इस बात से भी सिद्ध होती है कि माचवे ने लिखा है कि मित्र बापचंद्र महंत का मैं बहुत अभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस सुंदर ग्रंथ का आमुख लिखने का मान दिया। आगे वे लिखते हैं कि दुर्भाग्य से हिंदी में साहित्य के नाम पर शोध संस्थाएँ अनेक हैं, पर वे ऐसे प्रकाशनों को वरीयता और प्राथमिकता नहीं देती हैं।

दो खंडों में विभाजित इस पुस्तक के प्रथम खंड में चार तथा द्वितीय खंड में तीन शीर्षक हैं। इन सात शीर्षकों के अंतर्गत लेखक ने असम की तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर श्रीशंकरदेव के अभूतपूर्व एकीकरण कार्य का परिचय दिया है।

प्रथम खंड की सामाजिक पृष्ठभूमि में लेखक ने इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि 'असम के बरगीत' पूर्वी भारत के शास्त्रीय गीतों की एक विशिष्ट विधा है। इन गीतों का रचनाकाल वे 16वीं सदी ठहराते हैं। इनके लेखक तथा मार्गदर्शक गायक महापुरुष श्रीशंकरदेवजी और महापुरुष माधवदेवजी थे। अब तक उनकी परंपरा के लोगों में बरगीतों का प्रचलन है। हाँ, इन पाँच सौ सालों में हुए सामाजिक परिवर्तन का थोड़ा प्रभाव इन पर अवश्य पड़ा है।

रामायण के कवि माधव कंदलि ब्राह्मण थे। किरातवंशी राजाओं से ब्राह्मण कायस्थों का मेल-मिलाप और रामायण-महाभारत की कहानियों की जनप्रियता ने तत्कालीन असम में एक नवीन चेतना का संचार किया था। उसी चेतना का विकसित रूप 16वीं सदी में शंकरदेव के नेतृत्व में दिखाई पड़ा।

मध्य असम के 'बरदोवा' नामक स्थान के पास शंकरदेव का जन्म 15वीं सदी के मध्य में हुआ था। बचपन में ही माता-पिता के वियोग के कारण दादी की देख-रेख में उनका पालन-पोषण हुआ।

रामानुज, माधव, निम्बार्क और वल्लभाचार्य की भाँति गीता और ब्रह्मसूत्र अथवा उपनिषद की कुछ भी टीका-व्याख्या शंकरदेव ने नहीं लिखी। संस्कृत भाषा में सिद्धांत ग्रंथ 'भक्ति रत्नाकर' को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ उन्होंने स्थानीय लोक-भाषा (तत्कालीन असमिया) और ब्रजावली में कीं। इन रचनाओं में भी दर्शन संबंधी बातें प्रासंगिक हैं। अपने दार्शनिक मत का प्रतिपादक कोई स्वतंत्र ग्रंथ उन्होंने नहीं लिखा। उनका दर्शन विशेष रूप से भागवत पुराण पर आधारित है। अतः भागवत पुराण के दर्शन को ही शंकरदेव का दर्शन मान सकते हैं।

ब्रह्म, जीव और जगत संबंधी विचार ही दर्शन के मुख्य विषय हैं। शंकरदेव ने भी अपने पदों में भागवत अनुरूप अद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। शंकरदेव ने दर्शन विषयक तीसरा प्रसंग भागवत के आधार पर 'निमिनव सिद्ध संवाद' के रूप में प्रस्तुत किया। इसमें अनादिपतन के विपरीत परमात्मा में जगत के लीन हो जाने का क्रम बताया गया है।

प्रथम खंड में 'अन्यान्य साहित्य कृतियाँ' शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने उद्घाटित किया है कि शंकरदेव और माधवदेव के लिखे चार ग्रंथ उनकी परंपरा के भक्तों में बड़े महत्वपूर्ण माने जाते हैं। ये हैं—कीर्तनघोषा, भागवत का दशमस्कंध (पूर्वार्द्ध), नामघोषा और भक्तिरत्नावली। इनमें कीर्तनघोषा को संक्षेप में 'कीर्तन', नामघोष को 'घोषा', दशमस्कंध के असमिया पद को 'दशम' और विष्णुपुरीकृत भक्ति रत्नावली के असमिया पद को 'रतवली' कहते हैं। कीर्तन और दशम शंकरदेव के हैं, 'नामघोषा' और 'रत्नावली' के असमिया पद माधवदेव के हैं। शंकरदेव की सारी रचनाओं में 'कीर्तन' सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसी प्रकार माधवदेव की रचनाओं में 'नामघोषा' सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। शंकरदेव का एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ है—'भक्ति रत्नाकर'। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे जाने के कारण जनप्रिय नहीं है।

'बरगीत का स्वरूप' में लेखक ने दर्शाया है कि 'गीत' शब्द का साधारण अर्थ तो स्पष्ट है, किंतु गीत के साथ 'बर' विशेषता जोड़ने पर इसका भाव बदल गया है। यह 'बर' संस्कृत के 'वर' अर्थात 'श्रेष्ठ' अर्थ का सूचक है। असम की लोक भाषा में शब्द के प्रथम वर्ण 'वर' का उच्चारण 'ब' हो जाता है अतः श्रेष्ठ या उत्तम गीत के अर्थ में ही 'बरगीत' शब्द का प्रचलन होने लगा।

परिशिष्ट के अंतर्गत कुछ स्वर लिपियों को प्रतिपादित किया गया है। सहायक तथा प्रासंगिक ग्रंथ-सूची का उल्लेख करने से इस ग्रंथ की प्रामाणिकता की पुष्टि होती है। समग्रता में यह शोध ग्रंथ असमिया और हिंदी के बीच सेतु का निर्माण करता है।

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **डॉ. ओमप्रकाश पांडेय**

प्रकाशक : अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली।

पृष्ठ : 256

मूल्य : रु. 800/- (सजिल्द)

नागार्जुन के काव्य में जनवादी चेतना

नागार्जुन ने जिन मानव-मूल्यों और सरोकारों की कसौटी पर अपना साहित्य-सृजन किया है वह दलित, शोषित, पीड़ित, वंचित जनसमुदाय को ताकत देने का काम करता है। नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' है। यात्री उपनाम उनकी यायावरी वृत्ति का संकेत देता है। नागार्जुन ने कविता और उपन्यास दोनों ही माध्यमों में अपनी जोरदार उपस्थिति दर्ज कराई है। उनके अनुभव और अभिव्यक्तिफलक दोनों ही बहुत व्यापक हैं। डॉ. ओमप्रकाश पांडेय ने नागार्जुन की कविता पर विशेष रूप से केंद्रित आलोचना की है। प्रथम दृष्टि में यह आलोचनात्मक कृति किसी शोध कार्य का संपादित रूप नजर आती है। पुस्तक के शीर्षक के अनुरूप सभी बिंदुओं को अध्यायों में समेटने का प्रयास किया गया है।

भारत में जनवादी चेतना का विकास हमारे आधुनिक जीवन मूल्यों की एक स्वाभाविक परिणति है। लेखक ने इस कृति में जनवादी काव्य की परंपरा और विकास का उल्लेख करने के क्रम में जनवाद की संकल्पना को भी स्पष्ट किया है। "जनवाद क्या है? वास्तव में जनता की राजनीति में भागीदारी, जनता की अर्थनीति में भागीदारी एवं जनता की संस्कृति में भागीदारी का तात्पर्य ही वास्तविक जनवाद है।" गौरतलब है कि कोई भी विचार स्वतः प्रस्फुटित नहीं हो जाता, बल्कि इसमें देश-काल-परिवेश की महती भूमिका होती है। जनवादी चेतना की उत्पत्ति और विकास के पीछे की वैचारिक दृष्टि के बारे में विचार करते हुए लेखक इसी अध्याय में आगे लिखा है, "कला और साहित्य में जनवादी चेतना के पीछे मार्क्सवादी दर्शन की प्रेरणा है।"...जनवादी लेखन के व्यापक स्वरूप और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. कुंवरपाल सिंह लिखते हैं—"जनवाद का वास्तविक अर्थ है—साम्राज्यवाद, पूँजीवादी और सामंती व्यवस्था और उसके जीवन मूल्यों का सक्रिय विरोध, श्रमिक वर्ग और पीड़ित जन के साथ वास्तविक हमदर्दी। देशभक्ति, क्रांतिकारी शक्तियों की एकता और उनके संकल्प का नाम है जनवाद। जनवाद का उद्देश्य है—साम्राज्यवादी, पूँजीवादी और सामंती व्यवस्था के स्थान पर जनता के प्रजातंत्र की स्थापना।"

जनवादी काव्य की परंपरा और विकास को भी बड़े ही विस्तार से लेखक ने पाठकों के समक्ष रखने का कार्य किया है। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि लेखक ने अपने विषय के साथ अत्यंत वस्तुनिष्ठ तरीका अपनाते हुए तर्कपूर्ण विचारों का अत्यंत व्यापकता के साथ प्रतिपादन किया है। इसके बाद हम नागार्जुन की रचनाओं के वैशिष्ट्य वाले अध्याय पर जब ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि नागार्जुन जब रचनाकर्म में व्यस्त थे तो उस समय भी प्रायः कोई-न-कोई आंदोलन साहित्य और समाज में गतिमान थे। इन आंदोलनों का प्रभाव नागार्जुन की रचनात्मकता पर भी कमोबेश पड़ा ही है। छायावाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद आदि आंदोलनों को बाबा नागार्जुन ने अत्यंत करीब से देखा है। उनकी यायावरी प्रकृति ने उन्हें आम जनमानस को जानने-पहचानने में बहुत मदद की है। निडरता उनके काव्य का स्थायी भाव है। इस संदर्भ में लेखक लिखता है कि नागार्जुन ने जहाँ कहीं अन्याय देखा, जनविरोधी चरित्र की छद्मलीला देखी, उन सबका जमकर विरोध किया, उन पर सरकारी तांडव लीला से परिचित कराते हुए उन्होंने 1966 में 'शासन की बंदूक' शीर्षक कविता लिखी। तत्कालीन राजनीति का मुखौटा उघाड़ते हुए बेबाक टिप्पणी करने में कवि नहीं चूकता—

सत्य स्वयं घायल हुआ गई अहिंसा चूक
जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक
जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।

शासन के खिलाफ इस प्रकार की प्रहारक पंक्तियाँ लिखना हर किसी के वश की बात नहीं है। नागार्जुन इसी विशेषता के कारण अपने समकालीन कवियों से बहुत आगे निकल गए और आज भी दुनिया में जहाँ कहीं भी कमजोर को दबाया, प्रताड़ित किया जाएगा, नागार्जुन की कविता अनेक दमितों, शोषितों की जबान बन शासन की बंदूक के सामने मुखर होती रहेगी। पुस्तक का प्रकाशन अच्छा है। नागार्जुन के व्यक्तित्व, रचनाकर्म और जनवाद को समझने के लिए यह किताब पाठकों के लिए बहुत उपयोगी साबित होगी।

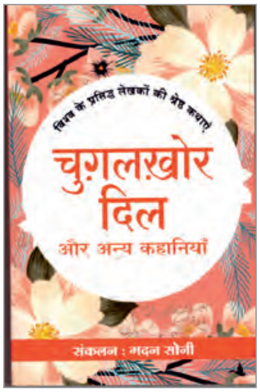

समीक्षक : **बीरेंद्र कुमार**

संकलन : **मदन सोनी** (अनुवादित)

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 255

मूल्य : रु. 199/-

चुग़लख़ोर दिल

और अन्य कहानियाँ

मानव जीवन रिश्तों का मूल आधार है। रिश्ते जो भावनाओं के आवेग में पलते-बढ़ते हैं, फलते-फूलते हैं, गहरे होते हैं। हम एक-दूसरे की खुशियों, गमों आदि में शामिल होते हैं। जीवन की आपाधापी में इन रिश्तों के सहारे हम कई बाधाओं को पार करते हुए सफलता की बुलंदियों को प्राप्त करते हैं। तभी तो हम एक सफल 'इनसान' कहलाते हैं। और कई बार इन रिश्तों में से कुछ नकारात्मक विचार भी उभरते हैं जो हमारे विकास के रास्ते के बाधक होते हैं, लेकिन उन पर विजय पाना ही असली पौरुष कहलाता है। इन सफलता और विफलताओं के दौर से होते हुए हर किसी के जीवन में अवश्य ही एक-न-एक रोचक कहानी बनती है। कहानीकार इन्हीं कथावस्तुओं को आधार बनाकर अपनी रचना प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं और हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं जिन्हें पढ़कर हम आनंदित और रोमांचित होते हैं।

यूँ तो विश्व के हर कोने में कहानी कहने-सुनने की परंपरा सदियों से रही है। लोग दिनभर के थकान के बाद रातों को आराम करने से पहले कहानियाँ कहते और सुनते रहे हैं। हमारे साहित्य में कहानी कहने और लिखने की परंपरा वैदिक काल से ही चली आ रही है। यहाँ उन दिनों कहानियों को गद्य और पद्य, दोनों ही शैलियों में कहा जाता था, लेकिन आधुनिक काल में सिर्फ गद्यात्मक शैली को ही कहानियों का दर्जा प्राप्त हुआ। पंचतंत्र, हितोपदेश, जातकमाला आदि अनेक ऐसी रचनाएँ हैं जो हमारे साहित्य की ही नहीं विश्व साहित्य की अमूल्य कृतियों में से शामिल हैं। लेकिन विश्व पटल पर आधुनिक कथा-शैली का जन्म 17वीं सदी के आस-पास माना जाता है। यह पुस्तक विभिन्न काल-क्रमों में कही और लिखी गई इन्हीं कहानियों का एक समन्वय है जो पाठकों को अपनी ओर बरबस आकृष्ट करती है। इस संग्रह में लेखक ने 17वीं सदी से लेकर 20वीं सदी के प्रदीर्घ अंतराल में संपूर्ण विश्व के हजारों साहित्यकारों में से चंद महानतम साहित्यकारों को चुनकर उनकी रचनाओं को संकलित कर पाठकों के सामने रखा है। इस संकलन में विश्व के दस देशों की सात भाषाओं की चौदह कहानियों को स्थान दिया गया है।

वॉल्तेयर, एडगर एलन पो, एमिल जोला, गी दा मोपांसौं, क्नुत हाम्सुन, अंतोन चोखव, इडिथ वॉरटन, लूईजी पिरंडेल्लो, टॉमस मान, स्टीफर ज़्वाइग, फ्रांत्ज़ काफ़्का, आर्नेस्ट हेमिंग्वे और प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकारों की विपुल रचनाओं में से किसी एक कहानी का सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में चयन कर उन्हें किसी पुस्तक का हिस्सा बनाना अपने-आप में एक चुनौती भरा कार्य है जिसे उन्होंने बखूबी निभाया। इन रचनाकारों की संगृहीत कहानियों में भावनाओं और मनोदशाओं के आवेग को जिस अंदाज में उकेरा गया है, उसे पढ़ते समय यही महसूस होता है कि घटना प्रत्यक्षतः हमारी आँखों के सामने घटित हो रही है। 'जानू और कोलाँ' कहानी में दो ऐसे दोस्त की दोस्ती को समेटा गया है जिसमें एक अमीर है तो दूसरा गरीब। लेकिन भावनाओं के सामने अमीरी और गरीबी का कोई स्थान नहीं रह जाता। वहीं 'चुगलखोर दिल' में कहानीकार ने एक हत्यारे की मनोदशा का ऐसा सटीक वर्णन किया है कि उसे पढ़ते ही बनता है। बात अगर 'दोबे के युवती' की करें, तो लेखक ने इस कहानी में रूप-सौंदर्य का वर्णन उस रसिकता के साथ किया है कि देखते ही बनता है।

'एक पत्नी की स्वीकारोक्ति' में लेखक ने दांपत्य जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव के साथ प्रेम, संदेह, क्रूरता और बदमिजाजी का ऐसा तानाबाना बुना है कि उसमें पाठक को थोड़ा भी उबाऊपन नहीं खलता। 'फूलों का हार' कहानी के माध्यम से लेखक ने पति-पत्नी के बीच उम्र के बड़े फासले के साथ ही सोच और भावनाओं के अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास किया है और अंत में यह दर्शाने का सफल प्रयास किया है कि यदि समझदारी से काम लिया जाए तो किसी भी मुसीबत से हम बाहर आ सकते हैं। इधर 'स्थानांतरित सिर' कहानी में लेखक ने मित्रता और प्रेम के उस उत्कर्ष को इस मार्मिकता के साथ उकेरा है कि कहानी लंबी होने के बावजूद पाठकों को पल-पल यह जानने के लिए आकर्षित करती है कि अब क्या होने वाला है। भारतीय कथा सम्राट प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' की तो बात ही क्या, निश्चय ही यह अपने-आप में अनूठी है।

इसके साथ ही इस पुस्तक में संगृहीत एवं प्रकाशित अन्य कहानियों की रोचकता, भाव-प्रवणता एवं कथा-प्रवाह में भी पाठक ऐसे खो जाते हैं कि उसे पता ही नहीं चलता कि कहानी कब समाप्त हो गई और समय कैसे बीत गया। ...और सबसे खास बात जो इस पुस्तक की है वह इसकी अनुवाद शैली है, जिसमें अनुवादक ने अपने रचनात्मकता की पराकाष्ठा का ज्वलंत परिचय दिया है। दस विदेशी भाषाओं की कहानियाँ होने के बाद भी इसका अनुवाद इतना सटीक और शब्द समन्वय के साथ ही कथा-प्रवाह को ध्यान में रखकर किया गया है कि पाठक को कहीं से यह आभास ही नहीं होता कि ये कहानियाँ दूसरी भाषा की हैं। हिंदी के पाठक भी इसे उसी रुचि के साथ पढ़ने में तल्लीन हो जाते हैं जिस तरह इनकी अपनी मूल भाषा के पाठक खो जाते होंगे। यदि संक्षेप में कहा जाए तो पुस्तक निश्चय ही पठनीय एवं संग्रहणीय है।

समीक्षक : **बीरेंद्र कुमार**

लेखक : **प्रकाश बियाणी** एवं **कमलेश माहेश्वरी**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 168

मूल्य : रु. 195/-

25 ग्लोबल ब्रांड

सौ साल बाद भी शिखर पर

हर व्यक्ति की अपनी अलग पहचान होती है। इस पहचान का आधार उसका कद-काठीय रूप-रंग, हाव-भाव, चलने, बोलने, उठने, बैठने आदि का ढंग, उसके स्वभाव, संस्कार आदि विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता है। कई बार व्यक्ति की आवाज ही उसकी पहचान बन जाती है। ठीक इसी तरह हर वस्तु और उत्पादों की अपनी पहचान होती है। यही पहचान उसके प्रति लोगों के विश्वास का आधार होती है। और यह विश्वास कायम होता है उसे बनाने वाले की दक्षता, ईमानदारी एवं निरंतर एकरूपता के आधार पर। आज का दौर बाजारवाद का दौर है और इस दौर में हम जब भी कोई सामान खरीदने बाजार जाते हैं तो अपने लिए किसी ब्रांडेड वस्तु को दिखाने और देने की माँग करते हैं। ऐसे में सवाल उठना लाज़मी है कि यह ब्रांड क्या है?

'ब्रांड' दरअसल किसी उत्पात का नाम मात्र नहीं है। यह उसके उत्पादों का पैटेंटेड ट्रेडमार्क भी नहीं है। वास्तव में यह उस वस्तु की गुणवत्ता के प्रति लोगों का दृढ़ विश्वास है कि वह जो सामान खरीद रहा है, वह बेहतरीन होगा। क्योंकि वस्तु खरीदते समय ग्राहक इसी विश्वास की कीमत चुकाता है कि उसके द्वारा खरीदे गए सामान में किसी प्रकार का खोट नहीं होगी। वह वस्तु उसे दिमागी झंझटों से मुक्त सेवा प्रदान करेगी और टिकाऊ होगी। यदि दूसरे शब्दों में कहें तो ब्रांडेड वस्तु के निर्माता केवल अपने उत्पादित वस्तु की कीमत प्राप्त नहीं करता, बल्कि वह उस भरोसे की, उस विश्वास की कीमत पाता है जो उसके ग्राहकों के दिमाग में घर किए है।

बाजारवाद के दौर में लोग उन्हीं वस्तुओं को खरीदते हैं जिन पर उसे पूर्णतः भरोसा होता है। वह अपने सेवा प्रदाता कंपनी से भरोसा, सुविधा, संतुष्टि, अपनापन, सम्मान, अपने लगाए गए पैसे की पूर्ण वसूली एवं उपलब्धता, इन सात बातों की अपेक्षा रखता है। यह पुस्तक इन्हीं बातों की पड़ताल करती हुई एक लोकोपयोगी पुस्तक है। इस पुस्तक में लेखक ने दुनियाभर में अपनी पहचान बना चुके 25 उन ब्रांड की विस्तार से चर्चा की है जिसे लोग आज के दौर में अपनी आँखें बंद कर खरीदते हैं। इस विश्वास के साथ कि उसके द्वारा लगाया गया पैसा कभी बर्बाद नहीं जाएगा। इन ब्रांड कंपनियों ने किस तरह से अपनी शुरुआत की, किन-किन परिस्थितियों के झंझावातों को सहा और उन भीषण परेशानियों के दौर से जूझते हुए खुद को बनाए रखा और आज दुनिया में अपने विशिष्ट पहचान के साथ सीना तान कर खड़ी हैं। इनके सामने अन्य ई-कंपनियाँ आईं जो उन ब्रांडेड कंपनियों के बाजार में सर्वाधिक लोकप्रिय उत्पादों से काफी हद तक मिलते-जुलते उत्पादों को बनाकर बाजार में उतरीं, लेकिन उन्हें वह सफलता नहीं मिली जिसकी उन्हें आशा थी। उन्हें अपना अस्तित्व कायम करना मुश्किल हो गया। लोगों ने सस्ता होने के बावजूद भी उसे पसंद नहीं किया। 'मार्क, कोलगेट, वैसलीन, पॉण्ड्स, पार्कर, डाबर, विक्स, बुलेट आदि' ऐसे 25 ब्रांडों को इस पुस्तक में स्थान दिया गया है जिसने कम-से-कम एक सौ साल से अधिक का सफर तय कर लिया है। इन कंपनियों के ब्रांडेड उत्पादों की यदि बात करें तो इस कड़ी में भारत में निर्मित होने वाले च्यवनप्राश को दुनिया का सबसे प्राचीन ब्रांड होने का श्रेय प्राप्त है जो वैदिक काल से ही चिर यौवन को बनाए रखने की औषधि है। इसके निर्माता थे हमारे वैदिक काल के ऋषि, 'महर्षि च्यवन' जिनके नाम पर इसका नामकरण किया गया। यह 46 जड़ी-बूटियों को निश्चित मात्रा में मिलाकर तैयार किया जाता है। सबसे खास बात यह है कि आज जितनी भी आयुर्वेदिक कंपनियाँ अपना यह उत्पाद बेचती हैं, सभी 'च्यवनप्राश' के नाम से ही इसे बेच रही हैं।

नाम के अनुरूप काम करने वाली गाड़ी 'बुलेट' हो या फिर कंप्लीट हेल्थ ड्रिंक 'हॉर्लिक्स' या फिर सुबह की खुशनुमा शुरुआत करने वाली 'चाय' जिसे जनसामान्य को सुलभ कराने वाली कंपनी 'लिप्टन' की भूमिका, स्वच्छता का प्रतीक साबुन 'लाइफबॉय', 'रोलेक्स' घड़ी, शीतलता का अहसास कराने वाली ड्रिंक 'पेप्सीको' या फिर आइसक्रीम के क्षेत्र में 'वाडीलाल' आदि ऐसे ही उत्पाद हैं जिसने लोगों के दिलो-दिमाग में अपनी जगह बना ली है जिसे वहाँ से हटाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन प्रतीत होता है। इन तमाम उत्पादों एवं उसे बनाने वाली 25 कंपनियों के बारे में सटीक एवं अतुलनीय जानकारियों से भरी यह पुस्तक निश्चय ही न केवल पठनीय है, बल्कि संग्रहणीय भी।

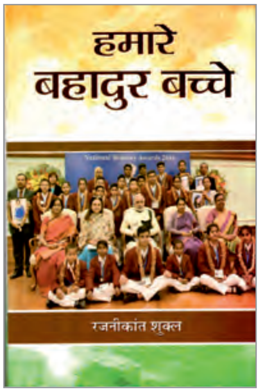

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

लेखक : **रजनीकांत शुक्ल**

प्रकाशक : चिल्ड्रन बुक टेंपल, दिल्ली।

पृष्ठ : 120

मूल्य : रु. 250/-

हमारे बहादुर बच्चे

हर वर्ष 26 जनवरी को हम कुछ बच्चों को देखते हैं जिन्हें राष्ट्रीय वीरता बाल पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है। प्रधानमंत्री समेत देश की बड़ी हस्तियाँ इन बच्चों के साथ तस्वीरें खिंचवाती हैं और इन्हें दिल्ली में अनेक जगह घुमाया जाता है। अगले दिन हम अखबारों में इन बच्चों की बहादुरी की घटनाओं को थोड़ा-बहुत पढ़ लेते हैं और अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं। तमाम दूसरी परंपराओं की तरह ही यह भी एक परंपरा-सी बन गई है। लेकिन हम यह जानने की कोशिश नहीं करते कि ये वीरता पुरस्कार प्राप्त बच्चे क्यों और किन परिस्थितियों में यह साहसिक कदम उठा पाए, क्यों अपनी जान पर खेलकर उन्होंने दूसरों की जान बचाने का प्रयास किया, क्या उनमें यह साहस का भाव जन्मजात था या परिस्थितियों ने उन्हें साहसी बना दिया। बाल साहित्यकार रजनीकांत शुक्ल ने इन वीर बच्चों पर एक पुस्तक लिखी है—'हमारे बहादुर बच्चे'। इसमें देश के अनेक राज्यों के उन बच्चों को शामिल किया गया है जिन्होंने 2016 में 'नेशनल ब्रेवरी अवार्ड' जीता था। देश के कोने-कोने से इन बहादुर बच्चों का चयन भारतीय बाल कल्याण परिषद, नई दिल्ली के जरिये एक उच्च स्तरीय कमेटी करती है।

यह भी संयोग है कि रजनीकांत शुक्ल स्वयं लंबे समय से इसी आयु वर्ग के बच्चों को पढ़ाते रहे हैं, लिहाजा वे बच्चों को बेहतर ढंग से समझते हैं। क्लासरूम में पढ़ाई के साथ-साथ स्काउटिंग, खेल, पर्यटन, शैक्षिक भ्रमण, एन.एस.एस. और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वे बच्चों के साथ बराबर शरीक रहे हैं। इस पुस्तक में उन्होंने बच्चों की बहादुरी के साथ-साथ उनके मनोविज्ञान पर भी जोर दिया है। घटनाओं का महीन चित्रण उस परिवेश को आपकी आँखों के सामने जीवंत कर देता है, जिसमें बच्चों का साहस सामने आया। इस साहसिक कदम के दौरान कई बच्चों को अपनी जान तक गँवानी पड़ी। कभी आग की लपटों से सामना तो कभी पानी के भँवर का मुकाबला, कभी बिजली के करंट की चपेट तो कभी नदी के बीच साहस की परीक्षा, कभी लुटेरों से सामना, कभी किसी गिरोह से मुठभेड़। ऐसी तमाम घटनाओं में ये बच्चे अपने प्रेजेंस ऑफ माइंड और त्वरित बुद्धि से किस तरह अपना संतुलन बनाए रख पाए, यह जानना दिलचस्प तो है ही, साथ ही यह हमें भी साहस का सबक सिखाता है।

केरल का आदित्यन एम.पी. पिल्लई 19 मई, 2016 को नदी के पास बैठा था। नदी में कुछ बच्चे तैर रहे थे। नदी में किनारे पर पानी ज्यादा नहीं था। अचानक नहाते हुए एबल नाम का एक लड़का फिसलकर नदी की गहराई की तरफ सरक गया। उसके साथ की दोनों लड़कियाँ इस घटनाक्रम से घबरा गईं। वे एबल को बचाने के लिए पानी में उसकी ओर बढ़ने लगीं। वे नहीं जानती थीं कि वे आगे अनजान खतरे की ओर बढ़ रही हैं। आदित्यन की नजर उन पर पड़ी। वह तेजी से रास्ता बनाते हुए उनकी ओर लपका। उसने एबल को पकड़ा और खींच कर किनारे की ओर बढ़ चला। उसने एबल को किनारे पर छोड़ा और फिर उन दोनों लड़कियों को बचाने के लिए आगे बढ़ गया। वे दोनों लड़कियाँ जान बचाने के लिए हाथ-पैर मार रही थीं। आदित्यन को लगा कि यदि इन दोनों को कुछ हो गया तो वह खुद को कभी माफ नहीं कर पाएगा। आदित्यन अंततः दोनों को बचाने में सफल हुआ। उसके इस साहसिक कार्य ने उसे नायक बना दिया। पंचायत ने उसे सम्मानित किया, नकद धनराशि और मोमेंटो दिया। स्कूल में भी उसका अभिनंदन हुआ। और राष्ट्रीय बाल वीरता पुरस्कार इन सम्मानों में सर्वोच्च था।

पुस्तक में ऐसे ही तमाम छोटे-छोटे किस्से हैं जो बच्चों के साहस और उनकी त्वरित बुद्धि के परिचायक हैं। इसमें कुछ ऐसे बच्चे भी शामिल हैं जिन्होंने साहस के साथ-साथ समझ-बूझ का परिचय देकर स्वयं की रक्षा की। उत्तर प्रदेश की रहने वाली अंशिका ऐसी ही वीर बालिका है जिसने अपने हमलावरों को अपनी समझ-बूझ से पकड़वाया और अपनी रक्षा की। दसवीं कक्षा की अंशिका के लिए और उसके माँ-बाप के लिए राहत की बात थी। अन्यथा कुछ भी हो सकता था। अंशिका की इस तरह की समझ और बहादुरी की वास्तव में सभी लड़कियों को जरूरत है। लड़कियों की बहादुरी से भी इन घटनाओं में कमी लाई जा सकती है। इस किताब को पढ़ना उन सभी घटनाओं से रू-बरू होना है जिन्होंने इन बच्चों को वीर बनाया। ये घटनाएँ उन बच्चों के साहस को भी दिखाती हैं जिन्होंने चाहे-अनचाहे दूसरों को बचाने के लिए अपनी जान गँवा दी। सहज और प्रेरित करने वाली भाषा इन बच्चों के साहसिक कारनामों को यादगार बना देती है। ये कहानियाँ हमारे भीतर भी साहस का संचार करती हैं और यही इस किताब की कामयाबी है।

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

लेखक : **अरुण अर्णव खरे**

प्रकाशक : कल्पना प्रकाशन, दिल्ली।

पृष्ठ : 116

मूल्य : रु. 150/-

हैश, टैग और मैं

अगर साहित्यिक विधाओं पर इस समय कोई अनुसंधान करे तो वह पाएगा कि इस दौर में व्यंग्य लिखने वालों की मानो बाढ़-सी आ गई है। इसके कुछ कारण हो सकते हैं। मसलन लोगों को व्यंग्य लिखना ज्यादा आसान लगता हो, व्यंग्य में लेखक अपनी बात ज्यादा बेहतर ढंग से कह पाता हो या यह भी संभव है कि व्यंग्य विधा में अभिव्यक्ति की अनंत संभावनाएँ दिखाई पड़ती हों। दिलचस्प बात यह है कि लेखन में एक पूरी उम्र गुजारने के बाद किसी का 63 वर्ष की उम्र में पहला व्यंग्य संग्रह-'हैश, टैग और मैं' प्रकाशित हो तो इसे व्यंग्य के प्रति उनका प्रेम ही कहा जा सकता है। लेखक अपनी भूमिका में यह स्वीकार करते हैं, अकसर व्यंग्य समाज की विद्रूपताओं से उपजता है, विसंगतियों पर चोट करता है, अन्याय के खिलाफ सचेत करता है और पाठक की चेतना को झकझोरता है, उसे सोचने पर विवश करता है। यह सही भी है—व्यंग्य अँधेरे में खड़े एक लैंप पोस्ट की तरह है जो राहों को रोशन करता है और उस पर जाने के संभावित खतरों पर प्रकाश डालता है। सुभाष चंद्र ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है, वह (अरुण अर्णव खरे) हरिशंकर परसाई की दृष्टि, शरद जोशी के शिल्प और ज्ञान चतुर्वेदी की कसावट तक सबसे परिचित हैं और वह परिचय उनके रचनाकर्म में भी दृष्टिगोचर होता है।

लेकिन अरुण अर्णव के संग्रह में न तो परसाई दिखाई दिए, न शरद जोशी और न ज्ञान चतुर्वेदी। रचनाकार के लिए किसी का अनुगमन करना न तो सुखद है और न ही न्यायपूर्ण। लेखक ने व्यंग्य के लिए अपना ही शिल्प रचा है। वह समाज में होने वाली घटनाओं पर महीन नजर रखते हैं। उनके विषय उधार के नहीं हैं। वह सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, हास्यास्पद घटनाओं, आर्थिक घटनाओं और तकनीकी पर कटाक्ष करते हैं। उनके अनेक व्यंग्य फेसबुक से जुड़े हैं—'लाइक दो लाइक लो', 'हैश, टैग और मैं', 'जय फेसबुकिया यारों की'। इनके अलावा लेखक नोटबंदी और हल्के रैकवार के तीन पत्र, हजार का विदाई वक्तव्य, राष्ट्रवाद की नजर में जी.एस.टी., हजार पर भारी सौ, अच्छे दिनों का अहसास, मुद्दों की राजनीति जैसे राजनीतिक मुद्दों को भी व्यंग्य के लिए चुनते हैं। आश्चर्य की बात है लेखक मौसम को भी अपने व्यंग्य का विषय बनाता है। 'अब मार्च का मौसम रुलाता बहुत है' में वह लिखते हैं, वर्षों पहले एक नाभि-दर्शना नायिका को पर्दे पर गाते देखा था—'तेरी दो टकिया की नौकरी मेरा लाखों का सावन जाए'। सावन को इतना सम्मान देने वाली नायिका की करुण पुकार ऊपर वाले ने सावन में सुनी हो या न सुनी हो, पर मार्च के महीने या कहें वित्तीय वर्ष समापन के मौसम में जरूर सुन लेता था और दो टके सावन पर कुर्बान कर देने का जज्बा दिखाने वाले पिया की झोली लाखों से भर देता था। इसी तरह एक अन्य व्यंग्य में वह लिखते हैं, मुरारी बाबू बरेली के हैं और 45 साल पहले जब वह यहाँ आए थे तो उस समय बरेली की धूम पूरे देश में मची हुई थी। एक तो वहाँ के बाजार में साधना का झुमका गिर गया था और पूरे देश से लोग झुमका ढूँढ़ने बरेली जा रहे थे। एक वही थे जो ऐसे समय में बरेली छोड़कर यहाँ रहने आ गए थे।

अरुण अर्णव खरे के लगभग सभी व्यंग्य शब्दों या वाक्यों के माध्यम से हास्य व्यंग्य पैदा करते हैं। इसलिए विषय तीखे होने के बावजूद वे व्यंग्य का प्रभाव पैदा नहीं कर पाते। मिसाल के तौर पर वे नाभि-दर्शना नायिका लिखते हैं, लेकिन इससे कोई प्रभाव पैदा नहीं होता। कहीं-कहीं उनके व्यंग्य लेखों की तरह हो जाते हैं। यानी जो बात अरुण स्वयं भूमिका में कह रहे हैं, वह व्यंग्य में दिखाई नहीं पड़ती। व्यंग्य दरअसल पूरे परिदृश्य में होता है, केवल वाक्यों, शब्दों और घटनाओं से व्यंग्य पैदा नहीं होता। व्यंग्य पूरी सोच से उबरता है, जैसे—हरिशंकर परसाई आजादी के बाद के भारतीय समाज की स्थिति को दर्शाने के लिए अनेक वाक्यों का प्रयोग करते थे। वह लिखते थे-इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं, पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं या जो कौम भूखी मारे जाने पर सिनेमा में जाकर बैठ जाए, वह अपने दिन कैसे बदलेगी, या फिर इस कौम की आधी ताकत लड़कियों की शादी करने में जा रही है। व्यंग्य में एक खास बात यह होती है कि गंभीर-से-गंभीर बात बिलकुल हलके अंदाज में कही जाती है।

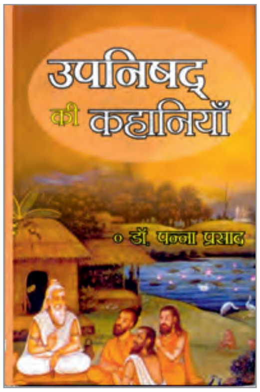

समीक्षक : **सचिन तिवारी**

लेखक : **डॉ. पन्ना प्रसाद**

प्रकाशक : मंजुली प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 450/-

उपनिषद् की कहानियाँ

आचार्य मम्मट 'काव्यप्रकाश' में लिखते हैं—

"काव्यं यशसे अर्थकृते,
व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये,
कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।"

इसी परंपरा का निर्वहन डॉ. पन्ना प्रसाद कर रहे हैं। भारतीय मनीषा के विद्वान एवं व्याकरण के सुधी अध्येता डॉ. पन्ना प्रसाद की सद्यः प्रकाशित कृति 'उपनिषद् की कहानियाँ' में कुल बीस कहानियाँ हैं, जो उपनिषदों में आए हुए विविध कथा-प्रसंगों का उद्घाटन करती हैं। ये कहानियाँ अनेक उपनिषद् विद्याओं का विवेचन करती हुई हमें भारतीय परंपरा से जोड़ने का काम करती हैं।

'उपनिषद्' का मूल अर्थ है, गुरु के निकट बैठकर अध्यात्म तत्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना। विद्वान मानते हैं कि संसार में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं, जिसमें मानव जीवन को इतना ऊँचा उठाने की वैसी क्षमता हो जैसी उपनिषदों में है। उपनिषदों को 'वेदांत' और 'श्रुति' भी कहा गया है। आज का भारतीय जन दुनिया के बारे में बहुत कुछ जानता है, किंतु अपनी परंपरा के बारे में लगभग बेखबर है। शोपेनहार, मैक्सम्यूलर, फ्रेडिक, श्लेगल, कजेंस, हैक्स्ले जैसे पश्चिम के शीर्षस्थ विद्वान जिस ज्ञान का लोहा मानते रहे हैं, उसके प्रति आज का सामान्य भारतीय मानस उदासीन है।

'उपनिषद् की कहानियाँ' में 'गोचारण से ज्ञान' नाम से पहली कहानी सत्यकाम जाबाल की है, जो जाबाला का पुत्र एवं आचार्य हारिद्रुमत गौतम का शिष्य था। इस कहानी में बालक सत्यकाम अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए गोचारण करने निकल जाता है और वहाँ उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। गो-संरक्षण और गो-संवर्द्धन से जुड़ी इस कहानी में ज्ञान, कर्म और इच्छा के समन्वय से स्वधर्म के पालन का संकेत दिया गया है।

आरुणि उद्दालक और उनके पुत्र श्वेतकेतु की कथा छांदोग्य उपनिषद् में मिलती है। आरुणि अपने पुत्र से कहते हैं—"हे सोम्य! आरंभ में केवल सत् था। सत् (आत्मा) ने कामना की मैं बहुत हो जाऊँ और तेज उत्पन्न हुआ। तेज (ऊष्मा) से जल बना, जल से अन्न।" "हे पुत्र! अन्न के सूक्ष्म भाग से मन बनता है, जल से प्राण बनता है और तेज से वाणी बनती है" (पृष्ठ 30)। श्वेतकेतु ने क्यों विवाह संस्था का नियमन किया, इसका मार्मिक वर्णन भी इस कहानी के अंतर्गत है। श्वेतकेतु द्वारा स्थापित चार पतियों की व्यवस्था प्रतीक रूप में आज भी कायम है। इसीलिए सनातन हिंदू रीति से विवाह के अंतर्गत स्त्री का स्वामित्व चंद्रमा, विश्वावसु नामक गंधर्व, अग्नि और अंत में वर (पति) को सौंपा जाता है। ऋग्वेद के दशम् मंडल में इससे संबंधित मंत्र इस प्रकार है—"सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः।" आरुणि और श्वेतकेतु तत्कालीन संस्कृति में ज्ञान के नवोन्मेष के ध्वजवाहक हैं। लेखक ने इनके चरित्र को बहुत मन लगाकर बुना है।

'पृथ्वी की उपासना' नामक कहानी में ऋषि आरुणि कहते हैं, "मनुष्य और पृथ्वी का संबंध बहुत घनिष्ठ है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' पृथ्वी मनुष्य को अपना सुस्वादु जल उसी प्रकार प्रदान करती है, जिस प्रकार माता अपने औरस पुत्र को अपना दुग्धपान कराती है" (पृष्ठ 40)। "पृथ्वी उस सीधी-सादी गाय के समान है, जो अपने अस्तित्व का सर्वांग हमारे कल्याण के लिए अर्पित कर देती है। हमारा कर्तव्य है कि हम सब इस पृथ्वी की सब ओर से रक्षा करें" (पृष्ठ 41)।

'नचिकेता का हठ' नामक कहानी में बालक नचिकेता और यमराज का संवाद है। बालक नचिकेता यम से आत्मतत्व जैसे अत्यंत सूक्ष्म विषय की शिक्षा लेता है। यह हमारी परंपरा रही है कि छोटे बालक से लेकर ब्रह्मज्ञानी तक उस परमतत्व को जानने की जिज्ञासा रखते हैं। "हे नचिकेता! तुम इस शरीर को रथ समझो, बुद्धि इस रथ का सारथि है, मन लगाम है, इंद्रियाँ घोड़े हैं, इंद्रियों के विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन घोड़ों के विचरने के मार्ग हैं। शरीर, इंद्रिय और मन—इन सबके साथ रहने वाला जीवात्मा ही भोक्ता है। वही इस रथ का स्वामी है—रथ में बैठा सवार है। इसलिए जीवात्मा को चाहिए कि वह रथ की दिशा को परमात्मा के मार्ग पर मोड़ दे। परमात्मा का मार्ग ही श्रेय मार्ग है। यही कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग है। इसी से स्वर्ग प्राप्त होता है, इसी से मोक्ष" (पृष्ठ 54)।

'द, द, द' नामक कहानी में देव, मनुष्य और असुर; प्रजापति की इन तीनों संतानों के ज्ञान प्राप्त करने की कथा है। एक बार इन तीनों ने प्रजापति के पास ब्रह्मचर्यवास किया और उसके अनंतर प्रजापति से उपदेश की प्रार्थना की। पुस्तक में वर्णित राजा जनक भारतीय संस्कृति और चेतना के प्रतीक पुरुष हैं। वे ब्रह्म ज्ञान, वैराग्य और भक्ति जैसे दार्शनिक विषयों से टकराते हैं और आश्रम व्यवस्था के सांस्कृतिक मूल्य तलाशते हैं। जनक को ज्ञान देते समय याज्ञवल्क्य के रूप में लेखक कई बार स्वयं उपस्थित हुआ प्रतीत होता है किंतु उसने इसे बहुत कलाकारी से छिपा लिया है।

इसके अतिरिक्त ऋषि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद, शुकदेव की जिज्ञासा, गार्ग्य को ब्रह्मज्ञान, अश्वल की सरस्वती पूजा, नारद को आत्मज्ञान, गायत्री की महिमा जैसी कहानियों में डॉ. पन्ना प्रसाद ने अपने परिश्रम से उपनिषदों के गूढ़ार्थ को समझाने का प्रयास किया है।

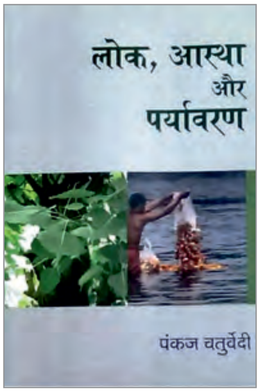

समीक्षक : **रोहित कौशिक**

लेखक : **पंकज चतुर्वेदी**

प्रकाशक : परिकल्पना प्रकाशन, दिल्ली।

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 325/-

लोक, आस्था और पर्यावरण

इस दौर में प्रकृति और पर्यावरण को लेकर बड़ी-बड़ी बातें हो रही हैं, लेकिन पर्यावरण बचाने के लिए जमीन पर गंभीरता के साथ काम नहीं हो रहा है। दरअसल हम अभी तक प्रकृति का महत्व नहीं समझ पाए हैं। हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि प्रकृति से प्रेम करके ही पर्यावरण को बचाया जा सकता है। इस दौर में जबकि हर तरफ देशभक्ति की गंगा बह रही है, अपनी धरती के लिए शीश कटा देने के नारे बहुत सामान्य हो गए हैं। अपनी धरती के लिए शीश कटाने का नारा लगाने वाली जनता क्या सच्चे अर्थों में अपनी धरती के लिए चिंतित है? क्या हम अपनी धरती को बचाने के लिए वास्तव में कुछ सार्थक प्रयास करते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए हमें स्वयं अपने गिरेबान में झाँकने की जरूरत है। इस अंधकारमय समय में सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं पर्यावरण केंद्रित विषयों पर लिखने वाले वरिष्ठ लेखक पंकज चतुर्वेदी की यह पुस्तक हमें एक नई रोशनी दिखाती है।

पुस्तक को दस अध्यायों में विभक्त किया गया है। पहले अध्याय में धर्म की मूल भावना समझने का आह्वान किया गया है। पुराने जमाने में त्योहारों के माध्यम से किसी-न-किसी रूप में पर्यावरण का संरक्षण भी होता था। दरअसल प्राचीन समय में हमने प्रकृति से कई रिश्ते जोड़े। प्रकृति के विभिन्न अवयवों को हमने अपने परिवार की तरह माना। प्रकृति के इन अवयवों को ईश्वर का दर्जा भी दिया गया। तभी तो हम आज तक धरती को 'धरती माता', साँप को 'नाग देवता', गंगा को 'गंगा मैया', चाँद को 'चंदा मामा' तथा सूरज को 'सूर्य देवता' कह रहे हैं।

दूसरे अध्याय में लेखक ने बताया है कि दीपावली के मूल में भारतीय समाज का पर्व-प्रेम, उल्लास और सहअस्तित्व का भाव है, लेकिन इस दौर में हम दीपावली की मूल भावना का हनन कर रहे हैं। दीपावली पर होने वाली आतिशबाजी से स्वास्थ्य संबंधी दिक्कतें लगातार बढ़ रही हैं। इस संबंध में विस्तृत आँकड़े पेश किए गए हैं। लेखक ने दीपावली को प्रकृति पूजा का पर्व बताते हुए विस्तार से दीपावली मनाने के कारण तथा प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है। उनका मानना है कि दीपावली पर जहर न फैलाकर इस पर्व के मूल स्वरूप को बरकरार रखा जाना चाहिए। तीसरे अध्याय में लेखक ने होली को देश की संस्कृति की पहचान बताते हुए कहा है कि यह त्योहार 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना को प्रदर्शित करता है। लेखक का मानना है कि पानी की बर्बादी और पेड़ों के नुकसान ने हमारी आस्था और परंपरा की मूल भावना को नष्ट कर दिया है। पुराने जमाने में होली केवल फूलों या फूलों से बने रंगों से ही खेलने का प्रचलन था, परंतु आधुनिक समय में रंगों तथा गुलाल से होली खेलने का प्रचलन बढ़ गया है। होली के अवसर पर प्रयोग किए गए रासायनिक रंगों में मौजूद लेड ऑक्साइड, कॉपर सल्फेट, मरक्यूरिक सल्फाइट, कोलोरैंट, सिलिका और एस्बेस्टस हमारे स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाते हैं।

चौथे अध्याय के अंतर्गत पर्यावरण के संदर्भ में छठ पर्व की चर्चा की गई है। लेखक का मानना है कि छठ पर्व पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता फैलाने का सामुदायिक पर्व है, लेकिन इस पर्व पर हम जलाशयों तथा घाटों पर प्रदूषण फैलाकर इस पर्व की मूल आत्मा को नष्ट कर रहे हैं। पाँचवें अध्याय में लेखक ने पर्यावरण संरक्षण में मंदिरों के योगदान को दर्शाते हुए यह आह्वान किया है कि इस मुद्दे पर मंदिरों को जरूरी पहल करनी चाहिए। इस संबंध में लेखक ने जयपुर के ताड़केश्वर मंदिर, लखनऊ के द्वादश ज्योतिर्लिंग मंदिर, मनकामेश्वर मंदिर, शाजापुर (मध्य प्रदेश) के माँ राज राजेश्वरी मंदिर, दतिया के पीतांबरा बगलामुखी मंदिर और काशी के विश्वनाथ मंदिर का उदाहरण दिया है। इन मंदिरों के माध्यम से जल संरक्षण, बेलपत्र तथा फूलों को एकत्रित कर खाद, अगरबत्ती और इत्र बनाने का कार्य किया जा रहा है। छठे अध्याय में बताया गया है कि हमारे पूर्वजों ने प्रकृति के प्रत्येक अवयव को सम्मान दिया, लेकिन इस दौर में तथाकथित विकास और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के चलते पर्यावरण पर गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया है। हालाँकि आदिवासी समाज प्रकृति के विभिन्न अवयवों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। सातवें अध्याय में बताया गया है कि हमारे प्राचीन वेदों में भी पर्यावरण-संतुलन की अनिवार्यता का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। आठवें अध्याय के विवरण के अनुसार कृषि के पारंपरिक ज्ञान के माध्यम से भी पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है। रासायनिक खाद व कीटनाशकों के प्रयोग ने खेतों और फसलों को जहरीला बना दिया है। इस माहौल में जैविक खेती को बढ़ावा देकर हम न केवल स्वस्थ रह सकते हैं, बल्कि पर्यावरण की रक्षा भी कर सकते हैं।

नौवें अध्याय में लेखक ने ऐसे प्रयोगों की चर्चा की है जिनमें लोग प्रकृति को बचाने के लिए अपनी प्राचीन परंपराओं को अपना रहे हैं। अंतिम अध्याय में लेखक ने जैवविविधता को बचाने की अपील करते हुए गिद्ध, गौरेया, बाज, कठफोड़वा और कुछ अन्य पक्षियों तथा जंतुओं के अस्तित्व पर मंडरा रहे खतरे पर चिंता व्यक्त की है। साँप और बछड़े की उपयोगिता पर प्रकाश डालकर समाज को आईना दिखाने का प्रयास भी सराहनीय है।

समीक्षक : **माधव नागदा**

लेखक : **बलराम अग्रवाल**

प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली।

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 175/- (पेपरबैक)

तैरती हैं पत्तियाँ

(लघुकथा संग्रह)

'तैरती हैं पत्तियाँ' वरिष्ठ लघुकथाकार बलराम अग्रवाल का लघुकथा संग्रह है। संग्रह की अधिकांश लघुकथाओं में बलराम अग्रवाल का काव्य मन खूब मुखरित हुआ है। पुस्तक की लगभग सभी रचनाएँ 'हवा की हथेली या पानी के पल्लू पर उन्मुक्त भाव से तैरती जीवित रश्मियाँ और चिनगारियाँ' हैं। बलराम अपनी बात 'ये पत्तियाँ' में कहते हैं कि प्राकृतिक नियमानुसार समय विशेष के बाद, टहनी से उन्हें विलग होना होता है, लेकिन इस विलगन को वे किस-किस तरह और कितना-कितना एन्जॉय करती हैं, इसे देखने के लिए एक जीवन काफी नहीं है। दुनिया के किसी पेड़ की कोई भी पत्ती टप से जमीन पर नहीं गिरती। पेड़ को त्यागने का आनंद लेती, लहराती हुई गिरती है, और गिरती नहीं है, उतरती है, अमूमन तो वह हवा की हथेली पर बैठकर ऊँचाइयाँ तय करती हुई काफी समय तक यहाँ-वहाँ तैरती है। इस यात्रा में वह अपने ही पेड़ की किसी पत्ती पर जा बैठने से लेकर दूर-दराज में बहती नदी के लहराते पल्लू पर जा टिकने तक जाने क्या-क्या खेल खेलती है। उसकी इस लंबी यात्रा का सिर्फ आनंद लिया जा सकता है, संपूर्णता में उसे लिख पाना मुश्किल है।

इस गद्यांश द्वारा बलराम एक लेखक की सामर्थ्य और सीमा दोनों की ओर इशारा कर देते हैं। मनुष्य जीवन एक पेड़ की तरह है और बीता हुआ क्षण डाल से बिछुड़ी पत्ती की तरह। बलराम अग्रवाल जैसे मँजे हुए कथाकार अपनी कलम से इस पत्ती को हथेली पर थाम कागज पर अक्स उकेरने का आनंद लेते हैं। 'समंदर : एक प्रेमकथा' काव्य बिंबों से सुसज्जित एक अद्‌भुत प्रेमकथा है जिसमें दादी जिस दार्शनिक अंदाज में प्रेम की व्याख्या करती हैं, लगभग उसी अंदाज में 'बुधुआ' लघुकथा का ईंटें ढोने वाला श्रमिक बुधुआ भी अपने रूमानी प्रेम के बारे में बाबू साहब को बताता है। हालाँकि अनपढ़ मजदूर बुधुआ को इतनी बड़ी-बड़ी बातें करते देख पाठकों को आश्चर्य हो सकता है, परंतु हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि संसार की सर्वश्रेष्ठ किताब जीवन है। मनुष्य जितना अपने जीवनानुभवों से सीखता है उतना किताबों से नहीं। कबीर और रैदास भी पढ़े-लिखे कहाँ थे। पढ़ने वाले से गुनने वाला ज्यादा ज्ञानी होता है।

लघुकथा 'रॉनी' में एक भी बार कुत्ता शब्द का प्रयोग किए बगैर इस प्रजाति में मौजूद प्रेम जैसी कोमल संवेदनाओं का बड़ी खूबसूरती से मानवीयकरण किया गया है। किसान आत्महत्या की त्रासदी बताने के लिए 'अनसुनी चीखें' में भटकती आत्मा का सशक्त रूपक गढ़ा गया है। 'अजंता में एक दिन' लघुकथा अजंता के मूर्ति शिल्प के बहाने गृहस्थ जीवन में गाहे-बगाहे बन गई ग्रंथियों को खोलने का एक कलात्मक प्रयास है। पति को बेजान मूर्तियों की प्रशंसा में निमग्न पाकर पति-पत्नी के पाखंड को खंड-खंड कर देती है। 'उजालों का मालिक' लेखकीय सरोकारों और क्षमताओं पर प्रकाश डालने वाली एक भावपूर्ण कथा है, 'ज्योतिषी इल्म के सहारे अँधेरे में कुछ टटोलती रूह का नाम है...पर, अफसानानिगार उजालों का मालिक होता है।' 'अपूर्णता का त्रास' में नारी की अतृप्त आकांक्षाओं को द्रोपदी प्रतीक के माध्यम से सार्थक ढंग से उजागर किया गया है। इमरान, जब तक मैं जिंदा हूँ, प्रेम गली अति साँकरी, सर्दियों में कुंग-फू, उसकी हँसी आदि लघुकथाओं की संवेदनात्मक गहराई के चलते हम इनमें आए कथा पात्रों से अनायास ही जुड़ जाते हैं। 'सुनो छोटी-सी गुड़िया की लंबी-सी कहानी' रमेश बतरा की याद को समर्पित है। बतरा की तीन पंक्तियों वाली छोटी-सी कालजयी लघुकथा की लगभग तीन पृष्ठों की कथात्मक व्याख्या बलराम अग्रवाल के भीतर बैठे एक परिपक्व समालोचक की झलक दिखा जाती है।

कुछ और लघुकथाओं का यहाँ उल्लेख जरूरी है जो अलग-अलग ढंग से, सामाजिक विसंगतियों को या तो उजागर करती हैं या फिर उन पर करारा प्रहार करती हैं। उठा लो खंजर (बढ़ते बलात्कार), देश इन दिनों, कीड़ा (सांप्रदायिक मनोवृत्ति पर चोट), खबरों के सिर-पैर (मीडिया का झूठ), बड़ी अदालत में, एक राजनीतिक संवाद (राजनीतिक दोगलापन), कुर्बानी (धार्मिक परंपराओं के सही संदर्भ की ओर इशारा), घुन वाले खंभे (पतनोन्मुख पत्रकारिता के खतरे), अकेला कब गिरता है पेड़, गर्दिश में गौरैया (पर्यावरणीय चिंता), दूसरा छोर (तीन तलाक के विरोधाभास), पाखंड (बद्धमूल धारणाओं पर प्रहार) आदि लघुकथाएँ पढ़कर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि बलराम अग्रवाल व्यापक सामाजिक सरोकारों के लघुकथाकार हैं। कल्पना, यथार्थ और विचार का संतुलन उनकी लघुकथाओं की अतिरिक्त शिल्पगत विशेषता है। संवादात्मक लघुकथाएँ अलग से रेखांकित करने योग्य हैं। इनमें आए छोटे-छोटे मारक संवाद सच के मुखौटे को नोचकर झूठ को बेपर्दा कर देते हैं। इस संदर्भ में हम परदादारी, पाकिस्तान, पाखंड, भरोसा और ईमानदारी, मजहब, मजहबी किताबें, मध्यमार्गी, मीडिया इन दिनों, मुर्दों के महारथी, नए रहनुमा आदि लघुकथाओं को ले सकते हैं।

बलराम अग्रवाल 'तैरती हैं पत्तियाँ' की लगभग सभी लघुकथाओं में एक नयेपन के साथ सामने आते हैं। यह नयापन कभी शिल्प के स्तर पर, कभी संवाद के चुटीलेपन के साथ तो कभी अछूते कथ्य के रूप में प्रकट होता है।

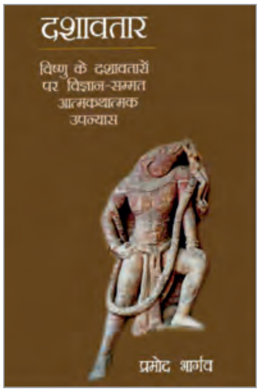

समीक्षक : **डॉ. लखनलाल खरे**

लेखक : **प्रमोद भार्गव**

प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।

पृष्ठ :

मूल्य : 900/-(सजिल्द), रु.300/-(अजिल्द)

दशावतार

अपने आविर्भाव से लेकर हिंदी उपन्यास में अनेक कलात्मक परिवर्तन हुए हैं। परिवर्तनों की इसी शृंखला का एक अनन्य उपन्यास है, वरिष्ठ रचनाकार व पत्रकार प्रमोद भार्गव द्वारा लिखित 'दशावतार'। हिंदी में आत्मकथात्मक उपन्यासों का सृजन कम ही हुआ है। वैज्ञानिक भाव भूमि पर भी कम उपन्यास लिखे गए हैं। मिथकों की गुत्थियाँ भी वैज्ञानिक रूप में सुलझाने की कोशिश विरले लेखकों ने की हैं। दशावतार इन तीनों अभावों की प्रतिपूर्ति समन्वित रूप से करता प्रतीत होता है। सृजन में जनरुचि का ध्यान रखा जाना लेखकीय सफलता को इंगित करता है।

यह प्रयास समूचे विश्व में चलता रहा है और मनीषी वैज्ञानिकों द्वारा निरंतर प्रयास जारी हैं। हमारे ऋषि-मुनियों में सृष्टि और जीव के रहस्य को भलीभाँति जान लिया था। शास्त्रों में तत्व-ज्ञान, आत्म-ज्ञान, द्वैत-अद्वैत प्रभृति शास्त्रीय शब्दावली इस रहस्य की ओर इंगित करती है। जीव-जगत-सृष्टि-ब्रह्मांड-आत्मा-परमात्मा सबका परस्पर संबंध है। शास्त्रों के अनुसार, विष्णु अथवा नारायण ने 24 अवतार धारण किए हैं। इनमें दस प्रधान हैं और इन्हीं दस में जीव उत्पत्ति का रहस्य है। प्रथम अवतार मत्स्य से क्रमशः वृद्धि और विकास प्राप्त करता हुआ राम और कृष्ण के रूप में मनुष्य पूर्ण रूप से विकसित हुआ। इसी क्रम में मानव सभ्यता का विकास हुआ। मानव की इसी यात्रा को वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न ऋषि-मुनियों ने मिथकों के द्वारा व्यक्त किया है। यहाँ एक प्रश्न अनुत्तरित अब भी है कि जिन विष्णु या नारायण के अवतारों की चर्चा शास्त्रों में है, वे विष्णु पूर्ण मनुष्य की स्थिति को कब और कैसे प्राप्त हुए? उनकी नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि-निर्माण के वैज्ञानिक निहितार्थ क्या हैं? 'दशावतार' उपन्यास में इन्हीं बिंदुओं पर शास्त्र और विज्ञान सम्मत समाधान प्रस्तुत किए हैं।

मूल पुरुष विष्णु के इस शास्त्रीय स्वरूप के साथ-साथ 'दशावतार' का लेखक उसकी वैज्ञानिक अवधारणा भी प्रस्तुत करता है, 'विज्ञान ने पहले परमाणु को ही ऐसा सबसे सूक्ष्मतम कण बतलाया था, जिसने विश्व की रचना की। फिर आगे की खोज से पता चला कि परमाणु भी विभाजित हो सकता है। यानी उसे और अत्यंत सूक्ष्म कणों में बाँटा जा सकता है। फलतः ये सूक्ष्म कण इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन नाम के लघुतम रूपों में सामने आए। कालांतर में कण-भौतिकी और विकसित रूपों में सामने आई और ज्ञात हुआ कि प्रोटॉन और न्यूट्रॉन को और विभाजित किया जा सकता है तथा इसमें सूक्ष्मकण क्लार्क व लेप्टॉन हैं। इस तरह से कण भौतिकी में एक प्रामाणिक या मानव प्रतिदर्श सामने आया, जिसमें क्वार्क व लेप्टॉन के बारह सूक्ष्मतम कणों के प्रकार दर्ज हैं। इनकी इस अभिन्न संबद्धता को अध्यात्म और विज्ञान में गहरा रिश्ता स्थापित करने वाले व्याख्याकार ब्रह्मा, विष्णु व महेश के प्रतीकों में इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन रूप भी देखते हैं।

पुराणों में जल प्लावन और जल प्लावन के पश्चात जीवधारियों की उत्पत्ति का उल्लेख है। उल्लेख यह भी है कि भगवान विष्णु के 24 अवतारों में दस प्रमुख हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। प्रारंभ के नौ अवतार हो चुके हैं और अंतिम दसवाँ भविष्य के गर्भ में है। यहाँ नवें अवतार, बुद्ध को लेखक नकारते हुए ब्रिटेन के जीवविज्ञानी जे.बी.एस. हल्डेन द्वारा स्वीकृत बलराम के अवतार को मान्यता प्रदान करते हैं, 'हल्डेन ने संभवतः जैव व मानव विकास के व्यवस्थित क्रम में अवतारों का पहली बार बीती सदी के चौथे दशक में अध्ययन किया। उन्होंने पहले चार अवतार मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिंह को सतयुग से इसके बाद के तीन वामन, परशुराम और राम को त्रेता से और आगामी दो बलराम और कृष्ण को द्वापर युग से जोड़कर कालक्रम को विभाजित किया है। हल्डेन बलराम को महत्व नहीं देते, किंतु कृष्ण को एक बौद्धिक पुरुष की परिणति के रूप में देखते हैं।'

दशावतारों में अंतिम कल्कि के मिथक को भी लेखक ने मौलिक स्वरूप प्रदान किया है। घोड़े पर सवार हाथ में तलवार लिए हुए कल्कि के संबंध में वे लिखते हैं, 'फलतः मेरे अवतार के अर्थ को स्पष्ट करने पर आप पाएँगे कि सफेद अश्व, जिस पर मैं सवार हूँ, वह शांति का प्रतीक है। अर्थात, अंहिसा के मार्ग का अनुयायी है। मेरे हाथ में तलवार का अर्थ ऐसे ज्ञान से संबंधित है, जिसके प्रभाव से अतिवादियों का मानसिक शमन होगा। इस अर्थ को इस रूप में लेना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि जिस कलियुग में एक-से-एक घातक हथियारों का आविष्कार हो चुका है और उनसे हजारों किलोमीटर दूर बैठे हुए ही लाखों लोगों और देशों का सर्वनाश किया जा सकता है, ऐसे में वर्तमान कलियुग की विद्रूपताओं का नाश एक व्यक्ति और एक तलवार भला कैसे कर पाएँगे?

'दशावतार' की भाषा अत्यंत सरल और सहज है, परंतु इसमें मुहावरों व लोकोक्तियों का अभाव है। यत्र-तत्र, 'कभी-कभी कुंठित पुरुष का अहंकार इतना वीभत्स हो जाता है कि उसकी समस्त संवेदनाओं को शून्य कर देता है, जैसे सूत्र वाक्य संदर्भ-सौंदर्य में वृद्धि कर देते हैं। परंतु इनका भी अभाव-सा ही है। विवेच्य कृति के लेखक प्रमोद भार्गव वक्तृत्व कला में भी निपुण हैं। किसी भी विषय पर एक विषय-विशेषज्ञ प्रोफेसर की भाँति घंटों बोल सकते हैं। इसी व्यास शैली की प्रतिछाया इनके लेखन पर भी परिलक्षित होती है।

समीक्षक : **ब्रजेश राजपूत**

लेखिका : **शीला रेड्डी**

अनुवाद : **मदन सोनी**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 296

मूल्य : 425/-

मिस्टर और मिसेज जिन्ना

विवाह जिसने हिंदुस्तान को हिला कर रख दिया

कभी-कभी पढ़ते-पढ़ते कोई ऐसी किताब हाथ लग जाती है कि उसे बिना किसी के साथ बाँटे रहा नहीं जाता। बेचैनी होती है बताने कि कैसी है यह किताब। तो ऐसी ही है यह किताब जिसका नाम 'मिस्टर और मिसेज जिन्ना, विवाह जिसने हिंदुस्तान को हिला कर रख दिया' है।

जिन्ना के बारे में वैसे भी हम कम जानते हैं और जितना कुछ जानते हैं उसके मुताबिक वो बड़े सख्त मिजाज इनसान थे और हमारे देश के बँटवारे के लिए वो जिम्मेदार रहे हैं। पाकिस्तान के लिए वो भले ही 'कायदे आजम' हों, मगर हिंदुस्तान के लिए तो वो किसी खलनायक से कम नहीं देखे जाते। बस इन दो लाइनों में ही हमारी जिन्ना से जुड़ी जानकारी खत्म हो जाती है। मगर वरिष्ट पत्रकार शीला रेड्डी की जिन्ना की प्रेम कहानी पर लिखी इस किताब में हम एक अलग ही जिन्ना से रू-बरू होते हैं।

मोहम्मद अली जिन्ना पूरा नाम था उनका जो मुंबई के सबसे ज्यादा फीस लेने वाले मशहूर बैरिस्टर थे। वकालत के अलावा आजादी के लिए चल रहे संघर्ष में उनकी खास भूमिका थी। अंग्रेज आलाकमान से खतो-किताबत कर उनकी ही भाषा में बेहतर तरीके से जिरह कर अपनी बात मनवाने वाले जिन्ना की गिनती उस दौर के दस बड़े राष्ट्रवादी नेताओं में होती थी। और उन्हीं जिन्ना ने अपने पारसी दोस्त सर दिनशा पेटिट की बेहद खूबसूरत बेटी रूटी से प्रेम विवाह किया था। उस दौरान जिन्ना 42 साल के तो रूटी की उमर 18 साल थी। यह उस दौर का लव जिहाद तो कतई नहीं था। हाँ, इसकी शुरुआत रूटी की ओर से ही हुई थी जो अपने घर आने वाले जिन्ना की विद्वता और उनके जिरह करने की अदा पर फिदा हो गई थीं। उस दौर में जिन्ना के लिए यह शादी करना आसान नहीं था क्योंकि उम्र के उस पड़ाव तक उन्होंने इस बारे में सोचा ही नहीं था। उनके लक्ष्य बड़े थे और वो अपने इन लक्ष्यों के आस-पास किसी को फटकने भी नहीं देते थे। अपने परिवार तक को नहीं। रूटी के लिए तो ये और भी मुश्किल था, मगर वो तो दीवानी थी। उसने अपने परिवार के सामने 16 साल की उमर में ही यह फैसला सुना दिया था कि शादी तो वो जिन्ना से ही करेगी और 18 की होते ही उसने घर से भाग कर यह शादी रचा ली।

20 अप्रैल, 1918 को हुई इस शादी ने मुंबई के पारसी और मुसलिम समुदाय में हंगामा खड़ा कर दिया। ये असंभव किस्म का मिलाप था जो लोग मानकर चल रहे थे कि ज्यादा दिन चलेगा नहीं। जिन्ना जो अंग्रेजों के आगे तक झुकने को तैयार नहीं होते थे, वो अपनी इस बालिका वधू के आगे बिछे रहते थे। बेइंतहा खूबसूरत रूटी जिन्ना को छेड़ती थीं, चिढ़ाती थीं और उनकी सारे राजनैतिक आयोजनों में उनके साथ साये की तरह साथ रहती थीं। रूटी मुंबई के रईस पारसी परिवार की पढ़ी-लिखी बेटी थीं इसलिए उस पारंपरिक दौर में भी रूटी का पहनावा और उनका बिंदासपन लोगों का ध्यान खींचता था। मगर इन सबसे अलग आजादी के आंदोलन के तेजी से उभर रहे नेता जिन्ना अपनी पत्नी पर गर्व करते थे और उसके प्रति बेपरवाह रहते थे। जिन्ना के पास सब कुछ था दौलत-शोहरत-रुतबा, मगर जो नहीं था वो था उनके खुद के लिए और अपनी पत्नी के लिए वक्त। जिन्ना ने जो कुछ पाया था, अपनी मेहनत और अपने कभी किसी के आगे नहीं झुकने वाले व्यवहार के कारण ही। इसलिए अपने आपको पूरे वक्त काम में व्यस्त रखना उनकी आदत थी। जो वो शादी के बाद भी बदलने को तैयार नहीं थे और यहीं से रूटी का अकेलापन शुरू होता था जो बाद में उनको जिन्ना से अलगाव, डिप्रेशन और बाद में कथित आत्महत्या का कारण भी बना। आत्महत्या इसलिए क्योंकि रूटी ने अपने मरने का दिन भी अपने जन्मदिन के दिन ही चुना। परियों सरीखी प्रेमकथा की नायिका ने शादी के दस साल बाद दम तोड़ा तो उसकी उमर मात्र 29 साल ही थी। और अपने पीछे रूटी छोड़ गईं बेटी दीना और अकेले जिन्ना को जिन्होंने कभी फिर शादी नहीं की। रूटी की मौत के बाद जिन्ना बदल गए कुछ ज्यादा सांप्रदायिक हो गए और जिद्दी जिन्ना ने देश का बँटवारा कर ही दम लिया। जिन्ना के करीबी लोगों ने लेखिका को बताया है कि रूटी जिंदा रहतीं तो जिन्ना को बँटवारे तक नहीं जाने देतीं।

इस रोचक किताब में लेखिका ने पहले पन्ने से लेकर आखिरी तक प्रेम कथा में रोमांच बनाए रखा है। रोमांस के बीच में गुथी हुई उस दौर की राजनीतिक घटनाओं से महसूस होता है कि ये घटनाएँ किसी की भी जिंदगी में कितना असर करती हैं। गुजरात के काठियावाड़ के छोटे-से गाँव से लंदन जाकर बैरिस्टर बनने की जिन्ना की कहानी भी बेहद प्रेरणादायक है। उसके बाद मुंबई आकर बड़ा वकील और नेता बनना जिन्ना की उस शख्सियत को दिखाता है कि जिसके बारे में हमें कहीं से मालूम ही नहीं हो सकता कि हमने जिन्ना को पाकिस्तान को सौंप दिया, मगर आजादी के हमारे साझे संघर्ष में जिन्ना के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

समीक्षक : **आशीष सिंह**

लेखक : **राहुल कुमार सिंह**

अनुवाद : **मदन सोनी**

प्रकाशक : वैभव प्रकाशन, छत्तीसगढ़।

पृष्ठ : 32

मूल्य : 20/-

एक थे फूफा

ऐसे सभी तत्वों से भरपूर जो किसी किताब में होने चाहिए यानी प्रवाह, रोचकता, कुछ सच, कुछ कल्पनाएँ, हास्य-व्यंग, दुख-सुख का नाम है 'एक थे फूफा'। पाठकों को बाँधे रखने के अलावा यह पुस्तक चुपके से बड़ा संदेश भी दे जाती है। सचेत करती है कि धूम्रपान किस तरह मौत की तरफ ले जाता है। यह बात बचपन से बीड़ी पी रहे 'फूफा' भी जानते हैं, मगर मानते नहीं। उम्र के आखिरी पड़ाव में वे डरते भी हैं, मगर बीड़ी प्रेम छूटता नहीं। यों इस किताब में 'बीड़ी महात्म्य' है, वह प्रसंगवश है। उल्लेखनीय यह भी कि बीड़ी पर इस बारीकी और विस्तार से शायद पहले कभी नहीं लिखा गया है। घटनाओं को आंचलिक बोली-भाषा के साथ रोचक शैली में पिरोया गया है कि एक बैठक में ही किताब खत्म हो जाती है। यह भी खास है कि पुस्तक में दर्ज टीप के अनुसार यह अस्पताल में बैठे-ठाले लिए गए नोट का परिणाम है। शायद अस्पताल के वातावरण में स्वास्थ्य के प्रति जागी चेतना ने 'एक थे फूफा' को जन्म दिया।

आम शिकायत है कि पुस्तक संस्कृति खत्म हो रही है। असल में पाठक संस्कृति खत्म हो रही है। आज बहुत-से ऐसे साधन हैं जो धर्म, अध्यात्म से लेकर खेल, राजनीति और मनोरंजन की खुराक पूरी कर देते हैं। 20-25 साल पहले शहरों के पुस्तकालयों और ग्रंथालयों में पाठकों की भीड़ रहती थी। बच्चों से लेकर वृद्ध तक शांति से अपनी बारी की प्रतीक्षा करते थे। आज वहाँ केवल शांति है। ऐसा नहीं कि किताबें नहीं लिखी जा रही हैं। बड़े पैमाने पर पुस्तकें दुकानों में ठसाठस भरी हैं। अब प्रश्न है कि किताबें क्यों लिखी जाएँ? क्या लिखें? और क्यों पढ़ें? दरअसल, हर किताब कुछ कहती जरूर है, पर इतना सब्र है कहाँ! लेकिन 'एक थे फूफा' सब्र का इम्तिहान नहीं लेती। शुरू से ही हल्के-फुल्के शब्दों के साथ गाँव की गलियों में ले जाती है। जिन्होंने गाँव देखा है, उनके सामने शब्द चित्र की तरह आते हैं। संवाद अनायास स्वयं से होने लगता है, पाठक एक पात्र की तरह किताब का हिस्सा बन जाता है। यही किसी पुस्तक की सबसे बड़ी सफलता है। किताब में छपे चित्र भूली-बिसरी यादों को ताजा करते हैं।

जिंदगी व्यस्त हो गई है। मोबाइल और कंप्यूटर ने उसे और भी व्यस्त बना रखा है। ऐसे में जरूरी हो गया है कि लेखक अपने नजरिए से नहीं, पाठक के नजरिए से लिखे, अर्थात पृष्ठ संख्या कम तो हो, दाम भी ऐसा कि बिना उफ मजा आ जाए। इस कटौती में भी 'एक थे फूफा' सौ फीसदी खरी है। छत्तीसगढ़ के इतिहास और पुरातत्व के अलावा संस्कृति और साहित्य के भी वे गहरे जानकार हैं। यह उनकी पहली साहित्यिक कृति है। इसकी यही सफलता है कि पहली ही पुस्तक को ग्राहकों, पाठकों और समीक्षकों की प्रशंसा मिली।

पुस्तकें केवल टाइम पास मित्र या पढ़ने तक मनोरंजन करने का साधन नहीं होतीं, बल्कि हम चाहें तो उससे संस्कार भी ले सकते हैं, अपनी संस्कृति और सांस्कृतिक विरासत को मजबूत बना सकते हैं। अपने वैचारिक धरातल को किताबों के माध्यम से उर्वर बना सकते हैं। आज 20 रुपये में 32 पृष्ठ की रेखाचित्रों वाली किताब रंगीन और आवरण के साथ संभव नहीं है इसलिए यह आसानी से समझा जा सकता है कि यह पुस्तक के माध्यम से चैरिटी का अनूठा तरीका है।

'एक थे फूफा' आंचलिक जीवनशैली, संस्कृति के साथ आज की सबसे बड़ी लत धूम्रपान के विरुद्ध पाठक को सचेत करती है। किताब की रोचकता हर वर्ग के लिए पठनीय है। कुल मिलाकर इस किताब में उत्सुकता जगाने, मुस्कराने, सहमने, चेतने के सारे सामान हैं, जो पाठक-पुस्तक संस्कृति का अनूठा और नया प्रतिमान है। अपने उद्देश्यों में लेखक राहुल कुमार सिंह और किताब 'एक थे फूफा' दोनों सफल हैं, सार्थक हैं।

आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

संपर्क :

संपादक, पुस्तक संस्कृति,
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन,
5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-2,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
दूरभाष : 267-07758/07876/07700
ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

पुस्तकें मिलीं

रावण

एक अपराजित योद्धा

शैलेंद्र तिवारी

रावण की ज़िंदगी से जुड़ी घटनाओं पर आधारित इस पुस्तक में रावण के जीवन के उन पहलुओं को जानने, समझने और उजागर करने का प्रयास किया गया है जो उसकी छवि के विपरीत थे। पुस्तक में अनेक रामायणकालीन प्रसंग हैं। पुस्तक को 50 अध्यायों में विभाजित किया गया है यथा—युद्धभूमि, पुनर्जन्म, सत्ता से मिलन, लंका में रावण राज्य, मंदोदरी मिलन, विवाह, अयोध्या में रावण, महिष्मति, दरबार, राजप्रासाद, सहस्त्रधारा, कैद में रावण, विभीषण, अभिमान, युवराज आदि।

इंद्र पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृ. 324; रु. 250.00

दुआएं

कहानी-संग्रह

देवेन्द्र कुमार मिश्रा

जीवन और समाज की खंड-खंड होती अवधारणाओं के बीच एक समग्र चित्र सामने रखने की कोशिश करता है यह कहानी संग्रह। कहानियों में सामाजिक विडंबनाओं को खोलकर प्रस्तुत किया गया है। कुछ कहानियों के शीर्षक हैं—सिस्टम, गरीबों का मनोरंजन, पीठ पीछे, दुर्घटना, भीखू भिखारी, श्रेष्ठ वर, दो बुजुर्ग, चंदेबाज आदि। ये रचनाएँ पाठक की संवेदनाओं को जगाने और सूक्ष्म दृष्टि रखते हुए एक मानवीय आदर्श की स्थापना करने की दिशा में की गई कोशिश दिखाई पड़ती हैं।

बोधि प्रकाशन, जयपुर।

पृ. 204; रु. 200.00

30 दिन में बनें शेयर मार्केट में सफल निवेशक

अमोल गांधी

प्रसिद्ध मार्केट गुरु

निवेश क्या है, निवेश क्यों ज़रूरी है, एक निवेशक को निवेश से क्या चाहिए, स्टॉक मार्केट में स्टॉक कैसे खरीदेंगे जैसे विभिन्न प्रश्नों के जवाब इस पुस्तक में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। शेयर मार्केट में निवेश करने वाले निवेशकों के लिए इसमें 30 अध्याय दिए गए हैं जिसमें शेयर खरीदते समय ध्यान देने योग्य बातें, शेयर बाज़ार को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक, शेयर बाज़ार में फंडामेंटल एनालिसिस, अंतरराष्ट्रीय निवेश और विविधता, शेयर बाज़ार : जोखिम और आय आदि विषय दिए गए हैं।

डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., दिल्ली।

पृ. 126; रु. 150.00

यादों की धरोहर

(साक्षात्कार)

कमलेश भारतीय

साक्षात्कार विधा बहुत ही संकुल व तकनीकी दृष्टि से श्रमसाध्य विधा है, परंतु कमलेश भारतीय ने बड़े ही सधे अंदाज़ में साहित्यकारों से उनकी वैचारिक-तथ्यपरक स्थितियों-परिस्थितियों को जानकर उन्हें साक्षात्कार का जामा पहनाया। 'यादों की धरोहर' पुस्तक में कमलेश भारतीय द्वारा हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकारों से समय-समय पर की गई भेंटवार्ताओं को संकलित किया गया है। यह इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण है जिसमें हिंदी के चार अन्य अग्रज साहित्यकारों यथा श्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. महीप सिंह, बटरोही तथा जगदीश चन्द्र वैद्य के साक्षात्कारों को विशेष रूप से संकलन में जोड़ा गया है।

आस्था प्रकाशन, जालंधर (पंजाब)।

पृ. 134; रु. 275.00 (सजिल्द), रु. 180.00 (पेपर बैक)

तजुर्बे की ताजगी

(कहानी संग्रह)

डॉ. सरोज गुप्ता 'सरस्वती'

तजुर्बे की ताजगी एक पठनीय कहानी संग्रह है जिसमें 14 कहानियाँ संकलित की गई हैं। इसमें समाज के विभिन्न पहलुओं पर गहनता से लिखा गया है। समाज की पीड़ा से जूझते समय लेखक की आँखों से जो आँसू झरझराते हैं, वही उसके सृजन के प्रेरक होते हैं। कहानियों के माध्यम से रचनाकार ने भोगा सत्य उजागर करने का प्रयास किया है।

उद्योग नगर प्रकाशन, गाज़ियाबाद।

पृ. 128; रु. 175.00

देशभक्ति के पावन तीर्थ

ऋषि राज

हमारे वीर जवानों की ओर से लड़े गए युद्धों और स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का एक विस्तृत और जीवंत वर्णन है प्रस्तुत पुस्तक। यह हमारे स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति एक श्रद्धांजलि है। पुस्तक में लगभग 50 ऐसे स्थानों की जानकारी दी गई है, जो शहीदों और देशभक्तों से जुड़े हुए हैं जिन्हें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभवों से प्रदर्शित किया है। यह पुस्तक एक सेतु है जो हमारी पुरानी पीढ़ी को आज से जोड़ने का कार्य करेगी।

प्रभात पेपरबैक्स, दिल्ली।

पृ. 190; रु. 200.00

10 श्रेष्ठ बाल कहानियाँ

दाने अनार के

बाल कथा संग्रह

जया मोहन

सच्चा दोस्त, ज्योति, सफलता का मंत्र, मुन्नू की सज़ा, किट्टो गिलहरी, चतुर चिम्पू, कल्लू, मेहनत का फल मीठा, गुनगुन भौरा, तथा सीख जैसी दस लघु बाल कथाओं का संग्रह है दाने अनार के नामक पुस्तक। आकर्षक चित्रों सहित बच्चों को सीख देने वाली कहानियाँ हैं। भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

रवीना प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 40; रु. 150.00

प्राचीन इतिहास में विज्ञान

ओमप्रकाश प्रसाद

इतिहास में प्रचलित कई विषयों को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखना आवश्यक है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक में जिन शीर्षकों के नाम से लेखों को प्रस्तुत किया गया है, उनमें प्रमुख हैं : प्राचीन विज्ञान एवं वैज्ञानिक, महाभारत, रामायण, शूद्र, मंदिर, सिक्के, कला में विज्ञान, दक्षिण भारतीय अभिलेख, उत्तर भारतीय अभिलेख, ज्योतिष विद्या-मिथक या यथार्थ, शिल्पकार, धर्मस्थल गया की ऐतिहासिक यात्रा आदि। नए-पुराने विषयों के आधार पर वैज्ञानिक योगदान के तथ्यों पर नवीन दृष्टि डालने का प्रयास ही इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है।

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 310; रु. 750.00

इदम् सर्वम्

समसामयिक उपन्यास

डॉ. प्रमोद कुमार सिंह

सामाजिक और मानवीय मूल्यों एवं मान्यताओं के क्षरण की ट्रेजेडी प्रस्तुत करने वाला यह एक उद्देश्यपरक सामाजिक उपन्यास है। यह कृति बेगूसराय के जनपदीय जीवन में व्याप्त बीती शताब्दी के दो दशकों के सामाजिक यथार्थ का औपन्यासिक रूपांतरण है। लेखक ने इसके माध्यम से ग्रामीण एवं कस्बाई जीवन में व्याप्त कलुष और कपट को, शोषण और संक्षोभ को बेहद कलात्मक और कथात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली।

पृ. 252; रु. 500.00

इंटरनेट फाइनेंस

तर्क एवं संरचना

वू शाओचो

वर्तमान समय में इंटरनेट फाइनेंस नई वित्तीय संरचना के रूप में लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में इंटरनेट फाइनेंस के संचालन ढाँचे, अस्तित्व के तर्क, इसकी सैद्धांतिक संरचना तथा जोखिम की संभावनाओं की चर्चा की गई है। इसमें इंटरनेट फाइनेंस व पारंपरिक फाइनेंस के बीच प्रतिस्थापन के विषय को भी स्पष्ट किया गया है। पुस्तक का हिंदी अनुवाद अखिल मित्तल द्वारा किया गया है।

रॉयल कॉलिन्स पब्लिशिंग ग्रुप, कनाडा।

पृ. 168; रु. (उल्लेख नहीं)

देश हमारा, धरती अपनी

डॉ. हरिविलास चौधरी 'शक्तिबोध'

भारत की मिट्टी गरिमामयी है। भारत अपनी पर्यावरणीय अनुकूलता एवं संसाधनीय प्रचुरता के आधार पर एक समृद्ध देश रहा है। देश हमारा, धरती अपनी काव्य रचना के माध्यम से कवि ने माँ भारती के प्रति अपनी असीम श्रद्धा एवं उद्गार प्रस्तुत किए हैं। इसमें संकलित कुछ कविताओं के शीर्षक हैं : धरती से आकाश कहे, क्या?, माधव से बोले बलराम, भारत भूमि, एक-एक सब वृक्ष लगाओ, वर्षा रानी, जननी जन्मभूमि, है अपना भविष्य अति उज्ज्वल आदि।

शक्तिबोध लोक साहित्य, मयूर विहार, दिल्ली।

पृ. 146; रु. 350.00

ईश्वर का अनुवाद करते हुए

(गद्य कविताएँ)

डॉ. स्वदेश कुमार भटनागर

हलफ़नामा, संतुलन, स्पर्श, अद्वैत, ईश्वर में ईश्वर मर गया, लफ़्ज़, पूर्ण अपूर्ण, रोज़ आदि कविताओं के माध्यम से कवि ने समय, समाज, और उसके यथार्थ का प्रत्येक स्पंदन अनुभव करवाने का प्रयास किया है। समस्त कविताएँ हमारे समय और समाज का एक पुनर्पाठ हैं जो हमारी संस्कृति की एक अभिनव व्याख्या प्रस्तुत करती हैं तथा मनुष्य एवं मनुष्यता को एक सर्वथा नए आलोक में प्रकाशित करती हैं।

प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

पृ. 142; रु. 551.00

प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा को शिक्षा भूषण सम्मान मेहसाणा में

ग्वालियर शहर के वरिष्ठ शिक्षाविद एवं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा को इस वर्ष के शिक्षा भूषण सम्मान से अलंकृत किया गया। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, नई दिल्ली द्वारा दिए जाने वाले इस सम्मान में डॉ. शर्मा को एक लाख रुपये की सम्मान निधि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्तिपत्र दिया गया। सम्मान समारोह 9 नवंबर को गुजरात के मेहसाणा शहर में आयोजित किया गया। डॉ. शर्मा देश के प्रमुख शिक्षाविद हैं। उन्होंने आधा दर्जन से अधिक पुस्तकों का लेखन भी किया है और अनेक देशों की शैक्षणिक यात्राएँ भी की हैं। वे मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक भी रह चुके हैं। यह पुरस्कार शिक्षा क्षेत्र में राष्ट्रीयता और भारतीयता के प्रचार-प्रसार में अनुकरणीय योगदान के लिए दिया गया है। यह संस्था विगत 26 वर्षों से शिक्षा और समाज में राष्ट्रीयता और भारतीयता के विस्तार के लिए काम कर रही है।

'हमारा संविधान : भाव एवं रेखांकन' पुस्तक का विमोचन

वरिष्ठ लेखक लक्ष्मीनारायण भाला 'लक्खी दा' द्वारा लिखित एवं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से प्रकाशित पुस्तक 'हमारा संविधान : भाव एवं रेखांकन' का विमोचन संविधान दिवस के अवसर पर किया गया। विमोचन राजभाषा हिंदी की अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'चाणक्य वार्ता' के मंच से हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि संसदीय कार्य राज्यमंत्री श्री अर्जुनराम मेघवाल एवं स्वास्थ्य राज्यमंत्री अश्विनी कुमार चौबे थे। इसके अलावा कार्यक्रम में विचारक एवं चिंतक के रूप में के.एन. गोविंदाचार्य, इन्द्रेश कुमार, श्याम जाजू, डॉ. सुभाष काश्यप, डॉ. योगेंद्र नारायण, लक्ष्मीनारायण भाला, रिखब चंद जैन एवं कैप्टन डॉ. सिंकदर रिजवी उपस्थित रहे।

550वाँ प्रकाशोत्सव मनाने के संदर्भ में गुरु नानक देव जी पर पुस्तकों का लोकार्पण

गुरु नानक देव जी के 550वें प्रकाशोत्सव मनाने के क्रम में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित तीन पंजाबी पुस्तकों-गुरु नानक वाणी, नानक वाणी तथा साखियाँ गुरु नानक देव-सहित गुरु नानक वाणी के हिंदी, उर्दू, ओड़िया, मराठी तथा गुजराती अनुवादों का भी लोकार्पण किया गया।

पुस्तकों का लोकार्पण करते हुए केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा इन पुस्तकों के प्रकाशन हेतु न्यास को बधाई दी। उन्होंने कहा कि आज की दुनिया की जटिलताओं में, गुरु नानक देव जी की शिक्षा और संदेश संगत एवं प्रासंगिक हैं जिन्हें आज के युवाओं तक पहुँचाना समय की माँग है, ताकि वे मानवता, समानता और 'एक ईश्वर' के दर्शन को समझ सकें। केंद्रीय खाद्य संसाधन उद्योग मंत्री, माननीया श्रीमती हरसिमरत कौर बादल ने अपने संबोधन में इन पुस्तकों के प्रकाशन हेतु न्यास की सराहना की।

न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने भी लोकार्पित पुस्तकों तथा आने वाली पुस्तकों के बारे में श्रोताओं को जानकारी दी। गुरु नानक देव जी की सरलता और सादगी के संबंध में बात करते हुए प्रो. शर्मा ने श्रोताओं से गुरु नानक देव जी के जीवन के कुछ उपाख्यानों को साझा किया जिसने सामाजिक, धार्मिक, नृजातीय समेत रंग, जाति तथा राष्ट्रीय सीमाओं एवं सरहदों तक का अतिक्रमण किया।

कार्यक्रम में एस.जी.पी.सी. दिल्ली के अध्यक्ष श्री मनजिंदर सिंह सिरसा, पूर्व राज्यसभा सदस्य तथा वर्तमान में शासकीय निकाय श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज के अध्यक्ष श्री एस. तरलोचन सिंह एवं प्राचार्य डॉ. जसविंदर सिंह तथा पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला के पूर्व कुलपति एवं एन.सी.एम.ई.एल. के सदस्य डॉ. जसपाल सिंह भी उपस्थित थे। कार्यक्रम श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज-दिल्ली यूनिवर्सिटी में हुआ था।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास में संविधान दिवस व्याख्यान के दौरान लोकसभा सचिवालय के पूर्व सचिव श्री एस.के. शर्मा

गुवाहाटी में पूर्वोत्तर पुस्तक मेला

असम के गुवाहाटी में, असम इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट प्लेग्राउंड में, 1 नवंबर, 2019 को उत्तर-पूर्व पुस्तक मेला के 21वें संस्करण की शुरुआत हुई। 1 से 12 नवंबर, 2019 तक चले इस पुस्तक मेला को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के सहयोग से ऑल असम पब्लिशर्स एंड बुकसेलर्स एसोसिएशन द्वारा आयोजित किया गया था, जिसका उद्घाटन भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू के कर-कमलों से संपन्न हुआ। श्री नायडू ने अपने उद्घाटन-संबोधन में कहा, "मातृभाषा आपको दृष्टि देती है, जिन अन्य भाषाओं में आपने कुशलता प्राप्त की है वे आपकी दृष्टि को एक नया आयाम देती हैं और पुस्तकों का पठन आपको दूरदृष्टि प्रदान करती है।" राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की निदेशक, श्रीमती नीरा जैन इस समारोह में अन्य विशिष्ट अतिथियों, यथा—प्रो. जगदीश मुखी, असम के राज्यपाल, श्री सर्बानंद सोनोवाल, असम के मुख्यमंत्री, श्री सिद्धार्थ भट्टाचार्य, असम के शिक्षा मंत्री, श्री एस.सी. सेठी, फेडरेशन ऑफ पब्लिशर्स एंड बुकसेलर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया के अध्यक्ष तथा श्री इमरान अहमद, ऑल असम पब्लिशर्स एंड बुकसेलर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष, के साथ सम्मानित अतिथि के रूप में उपस्थित हुईं।

इस पूर्वोत्तर पुस्तक मेला में उत्तर-पूर्व भारत की जीवंत संस्कृति और साहित्य के व्यापक प्रदर्शन के दृष्टिगत 2 नवंबर को, उत्तर-पूर्व दिवस के रूप में मनाया गया। इस अवसर पर पैनल विमर्श का आयोजन किया गया, विषय था—पूर्वोत्तर में साहित्य और समाज : संबंध एवं प्रभाव। कार्यक्रम का उद्घाटन गौहाटी यूनिवर्सिटी के पूर्व कुलपति डॉ. अमरज्योति चौधरी ने किया। इससे पूर्व, आमंत्रित विमर्शकारों एवं श्रोताओं का स्वागत करते हुए न्यास की निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने जोर देकर कहा कि न्यास पुस्तक प्रोन्नयन एवं पठन आदत के विकास के अपने प्रयासों में और गति लाएगा।

पैनल विमर्श के विमर्शकार थे—डॉ. रीता चौधरी, लेखिका व न्यास की पूर्व निदेशक, रश्मि नरज़री, साहित्य अकादेमी बाल साहित्य पुरस्कार विजेता तथा प्रो. दोयिर एते ताइपोदिया (अरुणाचल प्रदेश), युवा आलोचक। संचालन पूर्व नौकरशाह तथा अंग्रेजी लेखक श्री ध्रुव हजारिका ने किया।

सतर्कता जागरूकता सप्ताह

वसंत कुंज, नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के मुख्यालय में 28 अक्तूबर से 2 नवंबर, 2019 तक सतर्कता जागरूकता सप्ताह मनाया गया। इस संबंध में न्यास-कार्यालय के सभागार में 1 नवंबर, 2019 को एक व्याख्यान का आयोजन किया गया। यू.पी.एस.सी. के पूर्व संयुक्त सचिव (2016) श्री अरुण गौड़ ने इस अवसर पर मुख्य व्याख्यान दिया। इस वर्ष सतर्कता जागरूकता सप्ताह का विषय था— 'सत्यनिष्ठा : जीवन का एक मार्ग'।

अपने संबोधन में श्री गौड़ ने कहा कि ईमानदारी हमारी जीवन-शैली है। इसका प्रयोजन केवल कार्यालय में ही नहीं, कार्यालय के बाहर भी है। उन्होंने कहा कि हमें स्वयं के ऊपर नजर रखनी चाहिए—'क्या हम ठीक से काम कर रहे हैं? क्या हमारा काम बिना किसी भय और पक्षपात के है?' श्री गौड़ ने अपने जीवन के अनेक अनुभवों को श्रोताओं से साझा किया। उन्होंने कहा कि "कानूनों का अनुपालन भी ईमानदारी है।...हमें कानून का सम्मान और उसका पालन करना चाहिए।" साथ ही उन्होंने कहा, "आचरण को परिभाषित नहीं किया जा सकता। समाज में हम स्वयं को कैसे प्रस्तुत करते हैं, वही हमारा आचरण होता है।...आचरण परिस्थितियों पर निर्भर करता है।... यदि मानक के विरुद्ध काम होगा तो वह गलत आचरण होगा।" अंत में, श्री गौड़ ने जीवन में ईमानदारी और सत्यनिष्ठा की राह पर चलने का आह्वान किया।

कार्यक्रम का समन्वय न्यास में अंग्रेजी भाषा संपादक-सह-मुख्य सतर्कता अधिकारी श्री कुमार विक्रम ने किया।

पटना पुस्तक मेले में 'हृषीकेश सुलभ : संकलित कहानियाँ' का विमोचन प्रख्यात लेखिका डॉ. ऊषा किरन खान ने किया।

राष्ट्रीय शिक्षा दिवस व्याख्यान 2019

"पाठ्यक्रम सामग्री के माध्यम से जो शिक्षा, जो ज्ञान हम अपने बच्चों को नहीं दे सकते, वह पाठ्येतर पठन सामग्री के माध्यम से आसानी से दे सकते हैं।" यह बात नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर ओपन स्कूलिंग, नोएडा के अध्यक्ष श्री चंद्रभूषण शर्मा ने कही। वे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के वसंत कुंज-दिल्ली स्थित मुख्यालय में, 11 नवंबर, 2019 को देश के पहले शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद की जयंती-अवसर, जो अब राष्ट्रीय शिक्षा दिवस कहलाता है, पर बोल रहे थे।

श्री शर्मा ने अपने संबोधन में आगे कहा, "पाठ्यक्रम के अपने उद्देश्य और महत्व हो सकते हैं, किंतु पाठ्येतर पठन सामग्री का अपना महत्व है।... कथा-कहानियों के माध्यम से नानी-दादी के द्वारा जो नैतिक मूल्य और संस्कार एक बच्चे में जाने-अनजाने प्रवेश कर जाते हैं, वे आजीवन उस बच्चे के जीवन की दशा-दिशा को गहरे तक प्रभावित करते हैं।" श्री शर्मा ने पाठ्येतर पठन सामग्री को स्कूली पाठ्यक्रम सामग्री का पूरक मानते हुए पाठ्येतर सामग्री के पठन-आदत की आवश्यकता पर बल दिया। इस बार के राष्ट्रीय शिक्षा दिवस व्याख्यान का विषय था—पाठ्येतर पठन-सामग्री का स्कूली विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में योगदान।

कार्यक्रम की शुरुआत में न्यास की निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने मुख्य अतिथि-सह-मुख्य व्याख्यानकर्ता श्री चंद्रभूषण शर्मा का स्वागत किया। उन्होंने देश के पहले शिक्षा मंत्री श्री अबुल कलाम आजाद के जन्मदिन को शिक्षा दिवस के रूप में मनाने की परंपरा का उल्लेख करते हुए कहा कि न्यास हाल के कुछ वर्षों से इस अवसर पर एक सार्थक व्याख्यान का आयोजन करता आ रहा है। कार्यक्रम का संचालन न्यास में अंग्रेजी भाषा के सहायक संपादक श्री द्विजेंद्र कुमार ने किया।

बिलासपुर पुस्तक मेला

छत्तीसगढ़ के जिला-शहर बिलासपुर में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा 5 से 13 नवंबर, 2019 तक पुस्तक मेले का आयोजन किया गया। शहर के लालबहादुर शास्त्री सेकंडरी स्कूल में 5 नवंबर, 2019 को पुस्तक मेले का उद्घाटन हुआ। इस अवसर पर पंडित सुंदरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. वंश गोपाल सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. गौरी दत्त शर्मा तथा बिलासपुर जिला कलेक्टर डॉ. संजय अलंग की मुख्य उपस्थिति रही।

अपने उद्घाटन-संबोधन में डॉ. संजय अलंग ने उपस्थित पुस्तक-प्रेमियों से पुस्तकों से जुड़ने का आह्वान करते हुए कहा कि, "पुस्तक वह शक्ति है जो आपको साक्षर तो करती ही है, साथ ही, इसकी खुशबू आपको आनंदित भी करती है। पुस्तक की महिमा अनंत है। इसमें आप जितना डूबेंगे उतना ही आगे बढ़ेंगे।... पुस्तकें आपको, तथा बच्चों को भी सुसंस्कृत करेंगी।" पंडित सुंदरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. वंश गोपाल सिंह ने कहा, "ऐसे आयोजन से पुस्तकधर्मिता के प्रति एक अलख जगती है। रचनाकार जुड़ते हैं। निश्चित तौर पर युवा पीढ़ी में उत्सुकता जगती है। आइए, पुस्तकों से जुड़िए!...ये आपको बेहतर मनुष्य बनने के लिए आमंत्रित कर रही हैं।" अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री गौरी दत्त शर्मा ने कहा, "इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के छा जाने के बावजूद पुस्तकों की उपादेयता में कोई कमी नहीं आई है। आज इंटरनेट के समय में भी मुद्रित पुस्तकें बेहतर विकल्प हैं।" इस अवसर पर राजभाषा आयोग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. विनय पाठक ने कहा, "आज लोग कहते हैं कि पाठकीयता कम हो गई है। मैं इसे सही नहीं मानता। आज भी पुस्तकें पढ़ी जा रही हैं और उसके परिणाम हमारे सामने हैं।"

उद्घाटन सत्र में मंच संचालन न्यास के हिंदी संपादक तथा छत्तीसगढ़ के नोडल अधिकारी, डॉ. ललित किशोर मंडोरा ने किया। उन्होंने न्यास की पुस्तकीय एवं पुस्तक-प्रोन्नयन संबंधी गतिविधियों की जानकारी दी। कार्यक्रम के अंत में, आभार तथा धन्यवाद ज्ञापन न्यास में सहायक निदेशक श्री शुभाशीश दत्ता ने किया।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने पुस्तकें विमोचित कीं

केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी एवं लोकप्रिय लेखिका डॉ. अनीता भटनागर जैन द्वारा लिखित एवं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों 'कुंभ' व 'गरम पहाड़' का विमोचन किया। इस अवसर पर श्री निशंक ने कहा कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशन गृह है और वह जाँच-परख कर पुस्तकें प्रकाशित करता है जो प्रतिष्ठा का विषय है। कार्यक्रम में भारतीय आयकर सेवा के वरिष्ठ अधिकारी श्री आशु जैन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के हिंदी संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी तथा सौरभ जैन उपस्थित रहे।

चीनी पुस्तक के हिंदी रूपांतरण 'जंगली घास' का विमोचन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित, चीन के महान लेखक लू शुन की पुस्तक के हिंदी अनुवाद 'जंगली घास' का विमोचन चीन के जाने-माने लेखक, साहित्यिक टीकाकार एवं लू शुन के पोते चौ लिंगफेई ने किया। इस अवसर पर युए श्यु विश्वविद्यालय के उपकुलपति, पेईचिंग स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के विश्व साहित्य तुलनात्मक अध्ययन केंद्र के प्रोफेसर चांग पो ईंग एवं लगभग 50 से अधिक विभिन्न विश्वविद्यालयों से आए प्राध्यापक और एक्सपर्ट्स उपस्थित थे। इस अवसर पर पुस्तक को चीनी भाषा से अनुवाद करने वाले जे.एन.यू. के प्रोफेसर हेमंत अदलखा और रमण सिन्हा भी उपस्थित थे।

शारजाह पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के स्टॉल पर प्रसिद्ध गीतकार एवं निदेशक गुलज़ार

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ______

पता : ______

जिला : ______ शहर ______ राज्य ______ पिन कोड ______

फोन : ______ ई-मेल : ______

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) ______ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) ______ ड्राफ्ट संख्या ______ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी ______ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,

नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

अपने लिए जिए तो क्या जिए

(एक क्रांतिकारी की जीवन गाथा)

राजेंद्र नाथ बख्शी

स्व. शचींद्र नाथ बख्शी के जीवन के ज्ञात-अज्ञात तथ्यों को संकलित कर यह पुस्तक 'अपने लिए जिए तो क्या जिए' लिखी गई है। इसमें शचींद्र नाथ बख्शी के तरुणाई से संघर्ष, आज़ादी की ललक, काकोरी कांड के बाद फरारी, घर की कुर्की के बाद गरीबी, मुकदमा-सज़ा, राजनीति, जन प्रतिनिधि के रूप में कार्य आदि को सिलसिलेवार तरीके से प्रस्तुत किया गया है। साधारण बोलचाल की हिंदी, अंग्रेज़ी, उर्दू मिश्रित बोधगम्य एवं पठनीय भाषा शैली का प्रयोग किया गया है।

पृ. 236; रु. 250.00

कृष्णदत्त पालीवाल के प्रतिनिधि निबंध

संपादन : कृष्णदत्त पालीवाल

पालीवाल द्वारा अलग-अलग समय पर लिखे गए निबंधों का यह संकलन पाठकों में एक दृष्टिपरक अंतर्योजना का अनुभव कराता है। इन निबंधों में वे तलाशते हैं कि रचनाकार अपने समय के सृजन-संकट की विडंबनाओं से किस तरह जूझा है, उसकी काव्यानुभूति की निर्मिति का स्वरूप कैसा है। इनमें शामिल साहित्यकार हैं—महादेवी वर्मा, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुँवरनारायण, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र, अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, धूमिल, राजकमल चौधरी, विनोद कुमार शुक्ल आदि।

पृ. 266; रु. 275.00

अश्वनीकुमार दुबे

संकलित व्यंग्य

प्रस्तुत पुस्तक में संकलित 39 व्यंग्य रचनाएँ लेखक की व्यंग्य यात्रा को दर्शाती हैं। इन व्यंग्यों की यह विशेषता है कि इसमें लेखक ने व्यंग्य का पुट शामिल करने के लिए अपनी भाषा को नहीं बिगाड़ा। ये व्यंग्य रचनाएँ कहानी और निबंध की शक्ल में हैं। इसमें शामिल किए गए कुछ व्यंग्यों के विषय इस प्रकार हैं—शहर बंद, हाय! हम न हुए दिल्ली में, वर्मा जी व्यस्त हैं, चला मुरारी देश-सेवा करने, बिना पूँजी का धंधा, बारात और मंत्री जी, साहित्यिक जलसा, हाथ मिलाते रहिए, थाने में बजरंगबली, रामदीन बाबू की कथा आदि।

पृ. 200; रु. 220.00

संतों के संवाद

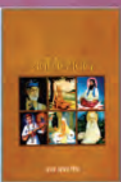

उदय प्रताप सिंह

भारतीय समाज में जब-जब कुरीतियों, विकृतियों और आडंबरों की प्रधानता हुई तब-तब संतों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने अपने मन, वचन और कर्म से समाज में आध्यात्मिक चेतना की लौ जलाई। मध्यकालीन भारत में जब ज्ञान और मनीषा की इस पुनीत भूमि पर बाहरी आक्रांताओं द्वारा धर्म और विचारों के हनन के प्रयास हुए तब नामदेव, रामानंद, कबीर, रैदास, तुलसी, मीरा, पीपा, दादू दयाल जैसे संतों ने अपनी वाणी से सामाजिक, आध्यात्मिक प्रेम, सौहार्द और एकता का पाठ समाज को पढ़ाकर सद्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। ऐसे ही संतों के बारे में लेखक ने भारतीय सामाजिक सौमनस्यता में इन विद्वान संतों के अवदान को रेखांकित किया है।

पृ. 116; रु. 140.00

नीलाद्रि विजय

सुरेंद्र महांति

अनुवाद : **शंकर लाल पुरोहित**

नीलाद्रि विजय शीर्षक से हिंदी में अनूदित इस उपन्यास के केंद्र में ओडिशा का श्रीजगन्नाथ मंदिर है। ओडिशा के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक इतिहास में श्रीजगन्नाथ का स्थान सर्वविदित है। राजनीतिक, साहित्यिक व कलात्मक दृष्टि से पाठकों के लिए यह उपन्यास अत्यंत रोचक एवं पठनीय है। प्रस्तुत उपन्यास मूल ओड़िया भाषा में लिखा गया है।

पृ. 178; रु. 200.00

रामधारी सिंह दिवाकर

संकलित कहानियाँ

प्रस्तुत कहानी संग्रह में लेखक ने गाँव में गाँव खोजने की पीड़ा को दर्शाया है। इनकी कहानियों में गाँव पुरानी अवधारणा के नहीं, अपितु बदलते हुए गाँव हैं। जिसमें केवल खेती बाड़ी ही नहीं होती, जबकि राजनीतिक उठा-पटक, जातिवाद, अत्याचार-भ्रष्टाचार, चुनावी जंग, दलबंदी आदि भी शामिल हैं। इन्हीं बदलते गाँवों की तस्वीर को लेखक ने अपनी कथा का उपजीव्य बनाया है। कुछ कहानियों के शीर्षक इस प्रकार हैं - काकपद, प्रमाण-पत्र, सरहद के पार, सदियों का पड़ाव, माटी-पानी, मखान पोखर, सूखी नदी का पुल, गाँठ, इस पार के लोग आदि।

पृ. 204; रु. 220.00

हमारी माँ तुम्हारी माँ

रामकुमार कृषक

एक सरल, सेवाभावी एवं श्रीमाँ कहलाई जाने वाली मिरा अल्फासा की जीवनीपरक पुस्तक है 'हमारी माँ तुम्हारी माँ'। फ्रांस के पेरिस की मिरा अल्फासा ने 20वीं सदी के शुरू में, अर्थात् सन् 1905 के आस-पास 'गीता' पढ़ी और उन्हें लगा कि 'गीता' का दर्शन ही सच्चा ज्ञान है। भारत की अध्यात्म-भूमि को उन्होंने कर्मभूमि बनाया और मानवता की सेवा में लग गईं।

पृ. 50; रु. 80.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 • ई-मेल : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in